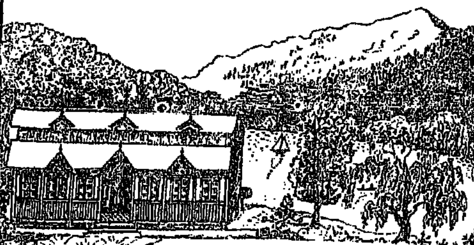


यह प्रेमगाथा

सरोज को

मोहब्बत, मनोविज्ञान और मूँछदाढ़ी

[एक हास्य कथा प्रयोग]

प्रयोग करने वाले

केशव चन्द्र वर्मा

लखनऊ

दि अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड

१९५५

मुद्रक:—महावीर प्रसाद, प्रेम प्रेस, कटरा, इलाहाबाद

भूमिका

लिखते-लिखते यह ख्याल आया कि भूमिका क्यों लिखी जाय? अगर भूमिका लिखना या लिखवाना फ़ैशन हो सकता है तो उसका न लिखना भी एक फ़ैशन हो सकता है। अगर भूमिका लिखता तो भी यही लिखता कि यह अपने ढंग का अकेला और अनूठा उपन्यास है; हास्य का ऐसा पहिला प्रयोग है, 'भूतो न......', मैं अफ़लातून हूँ, और कोई अफ़लातून नहीं है; मेरे तीर के सामने कामदेव के पंचशर बेकार हैं—आदि आदि! आप पढ़ कर न सिर्फ़ उपन्यास की बुराई करते बल्कि भूमिका को भी बुरा भला कहते। ऐसी हालत में सबसे सस्ता नुस्खा यही है कि मैं भूमिका बेचारी को गाली खाने से बचा लूँ।

५० ए, टैगोर टाउन
इलाहाबाद
जून १९५५

केशव चन्द्र वर्मा

Newman only cried out for light
in the gloom of a sad world;
Dickens gave it.

—*Stephen Leacock*.

इस कथा के सभी पात्र और घटनाएँ एकदम झूठी और कल्पित हैं –

तब तक

जब तक कोई ठीक इसी तरह रह कर इस पूरी कथा को सच्चा साबित करने के फेर में न पड़ जाय।

मुझे पूरी उम्मीद है कि जो कहानी मैं आपको सुनाने जा रहा हूँ उसे आप भी नहीं मानेंगे। ठीक उसी तरह जिस तरह पहिले पहल मैंने भी नहीं मानी थी। लेकिन जिस तरह न मानते हुए भी यह अफवाह रूपी कथा, मैं आपको सुनाने के लिए कमर कस रहा हूँ, हो सकता है, एक दिन आप भी उसी तरह इस पर पूरा अविश्वास करते हुए, इसके काम आएँ। इसी आशा पर मैं आपको यह कहानी जरूर सुनाऊँगा। शुरू करूँ?

०

एक

. . .

१

'नार्मल आ गया !' थर्मामीटर निकाल कर नर्स सुब्बारंजिनी ने मुस्कराते हुए दामोदर विष्णु घोरपड़े की ओर को देखा ।

'नार्मल' का नाम सुनते ही पिछले छः दिन से बुखार में पडे एडवोकेट दामोदर विष्णु घोरपड़े सिरहाने की तकियों का सहारा लेकर बैठ गए ! उनकी आँखों में एक अजीब सी करुणा विगलित दया याचना दिखाई पड़ रही थी । बोले :

'तुमने इन छः दिनों में कितना कुछ किया है । फिर सुब्बारंजिनी ! नार्मल न आता तो भला जाता कहाँ ? . . .तुमने अपने दिन को दिन नहीं जाना और रात को रात नहीं माना ! ड्यूटी के अलावा भी हर वक्त तुम मेरे ही पास, मेरी ही सेवा में लगी रहीं। मैं इससे उऋण नहीं हो सकता !'

नर्स सुब्बारंजिनी इस तरह की बातें प्रायः अस्पताल के चंगे हुए रोगियों से सुनने की आदी हो गई थी। वह यह भली भाँति जानती थीं कि मर्द हमेशा इसी तरह की प्रशंसा करता है वह चाहे रोगी हो या राजा हो। अपनी मुस्कराहट को अक्षुण बनाए रखती हुई सुब्बा-रंजिनी ने कहा---

'नहीं वकील साहब! मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है जिसके लिए आप इतने कृतज्ञ हों। मैंने तो अपना फर्ज अदा किया है। इसके अलावा आपका ध्यान सब ने इसीलिए रखा कि कैप्टन चारिया खुद आप में 'पर्सनल इन्टरेस्ट' लेते हैं।'

'हाँ! लेकिन और किसी ने इतना क्यों नहीं किया जितना तुमने अपनी काया को गलाया! यह जो मेरा बुखार उतरा है यह सब तुम्हारी ही तपस्या तो है!'

'जिस दिन मिसेज़ हरनाम जी आपको इस 'बेड' पर लिटा गई थीं उसी दिन उन्होंने मुझे आपका केस सहेजा था! मैं तो उन्हीं की आज्ञा का पालन कर रही थी।' सहसा नर्स सुब्बारंजिनी ने अपने मन में यह अनुभव किया कि वह जो कुछ कह रही थी वह हूबहू सच नहीं था!

उसी वक्त कमरे में एक अधेड़ उम्र, गौर वर्ण के, थुलथुल शरीर वाले व्यक्ति ने एपरन पहिने, गले में डाक्टरी आला लटकाए हुए, प्रवेश किया। यही डाक्टर कैप्टन एस० चारिया थे। कैप्टन एस० चारिया, पंजाब के रहने वाले थे। उनकी एक खास तरह की 'हो हो' करके हँसने की आदत से सारा 'सुभद्रा देवी धर्मार्थ अस्पताल' वाकिफ़ था! दूर से ही लोग जान जाते थे कि कैप्टन चारिया आ रहे हैं। कमरे में घुसते घुसते उनकी हँसी की ध्वनि गूँजने लगी। उनकी यह 'हो हो' मार्का हँसी घोरपड़े को भी बहुत अच्छी लगती थी।

'कहो भई घोरपड़े! अब क्या हाल है? . . .क्यों सुब्बारंजिनी, 'टेम्परेचर कितना है?' हँसते हुए डाक्टर चारिया ने नर्स से सवाल किया।

सुब्बारंजिनी के नार्मल बताने पर कैप्टन चारिया आगे बोले—

'बस भई! अब तू चंगा हो गया! छोड़ खाट! तुमसे मैंने कितनी बार कहा कि कुछ 'फल शल' खाया करो! उसी से तुम्हारी हेल्थ बनेगी! तुम जानते हो! मैं तो यही कहता हूँ कि आदमी में जो भी खराबी होती है वह खाने पीने को ठीक कर देने से ठीक हो सकती है।'

घोरपड़े ने मुस्करा कर जवाब दिया—

'हाँ डाक्टर साहब, मिस सुब्बारंजिनी ने जितनी मेहनत की है, उसका तो यही फल हुआ है कि मैं चंगा हो रहा हूँ।'

डाक्टर चारिया भी यह सुन कर मुस्कराए। उन्होंने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—

'भई! हरनाम बेहद परेशान थीं। हर वक्त वह अस्पताल आ आकर तुमको देख जाया करती थीं। हरेक नर्स को उन्होंने अलग अलग हिदायतें दे रक्खी थीं। तुम्हारी जरा सी बीमारी थी लेकिन उसने तो सिर पर सारा अस्पताल उठा लिया था! बात यह है कि दवा से आदमी एकदम चंगा हो नहीं सकता! तुमको तो कुछ हरी सब्जी खाना चाहिए। उससे तुम एकदम ठीक हो जाओगे। तुम्हारे अंदर विटामिन ए और डी की कमी है! मुझे देखो! आखिर मैं भी तो खाने के ही बल पर इतना मोटा ताजा शरीर बनाए रखता हूँ।' इतना कहकर वे फिर वही हँसी हँसने लगे।

आला लगाकर डाक्टर चारिया ने घोरपड़े का सीना देखा और सुब्बारंजिनी से फल का सूप और ग्लूकोज देने के लिए कहते हुए उन्होंने कमरे से बाहर की तरफ कदम बढ़ाए।

घोरपड़े ने सुब्बारंजिनी से कहना शुरू किया—

'आप फल बल का चक्कर जाने दीजिए। डाक्टर चारिया की यही आदत है। वह हर बीमारी को खाने से ठीक करने के चक्कर में रहते हैं। मैं उनको बहुत दिनों से जानता हूँ। उन्हीं का कहना मानूँ तो मूली की रोटी और सरसों के साग को मैं संसार का सर्वोत्तम भोजन मानूँ!'

सुब्बारंजिनी चुप चाप एक गिलास में संतरे का रस छानती रही ।

'कैप्टन चारिया बड़े अच्छे आदमी हैं। मिरोज़ हरनाग जी भी मेरा बहुत ध्यान रखती हैं। लेकिन इनकी कुछ बातें तो इतनी अजीब लगती हैं कि मैं क्या कहूँ! मेरी तंदुरुस्ती देखकर कहते हैं कि ऐसी तंदुरुस्ती तो सिर्फ औरतों को शोभा देती है! भला बताइए क्या मैं इतना दुबला हूँ ?'

सुब्बारंजिनी चुपचाप गिलास में संतरा निचोड़ती जाती और सुनती जाती। उसे घोरपड़े के मुंह से यह सब बातें सुनने में मज़ा आता था।

'आप जानती है डाक्टर चारिया कहते हैं कि मैं रोज सुबह उठकर हरी सब्जी खाऊँ और वर्जिश करूँ! मैं हँस पड़ता हूँ तो वे कहते हैं कि भला आप जैसे नौजवान इस देश की आजादी क्या बनाए रक्खेंगे? दलील क्या देते हैं कि जब तक हर नौजवान दो तीन घण्टे वर्जिश करके अपने बदन को नहीं बनाएगा तब तक खोया हुआ पंजाब वापस नहीं लिया जा सकता!' इतना कह कर वकील घोरपड़े जोर से हँसने लगे।

सुब्बारंजिनी की मुस्कराहट भी कुछ स्वरों में आ गई। उसने गिलास घोरपड़े के हाथों में पकड़ा दिया। रस पी चुकने के बाद घोरपड़े ने सुब्बारंजिनी से फिर पूछा—

'आप डाक्टर चारिया और श्रीमती हरनाम जी को कब से जानती हैं ?

सुब्बारंजिनी बोली—

'हरनाम जी को मैं तबसे जानती हूँ जब वे दिल्ली में मेरे साथ

अस्पताल में काम करती थीं। कैप्टन चारिया की हरनाम जी से शादी कैसे हुई यह भी मैं जानती हूँ। स्वयं श्रीमती हरनाम जी ने ही मुझे यह सब बताया है!'

'अच्छा? कैसे शादी हुई, पता है आपको? कुछ रोमांस था क्या?'

'नहीं डाक्टर चारिया ने तो एक ज्योतिषी के कहने पर हरनाम जी से विवाह किया था। उसकी बात सच ही निकली। डाक्टर चारिया तो रावलपिंडी के रहने वाले थे, और हरनाम जी दिल्ली की ही हैं। पंजाब में तो पहिले बहुत सी ऐसी डिगरियाँ मिल जाया करती थीं जिनका कुछ भी माने मतलब नहीं होता था लेकिन उनसे हरेक डाक्टर अपना साइन बोर्ड खूब भर लेता था। ऐसी ही बहुत सी डिगरियाँ डाक्टर चारिया के पास भी थीं। डाक्टरी की ये सब डिगरियाँ लिख लेने के बाद वे पिछली लड़ाई में डाक्टर होकर भरती हो गए। वहीं वे कैप्टन हो गए। मगर लड़ाई खत्म होते ही वे निकाल दिये गए। दिल्ली लौटने पर उन्होंने अपनी डाक्टरी चलाने की बड़ी कोशिश की मगर दिल्ली ने इनकी एक न मानी। वहीं दिल्ली में इनकी मुलाकात एक ज्योतिषी से हुई। सब तरफ से हार कर इन्होंने उस ज्योतिषी के ही पाँव पकड़े। इनकी हाथ की रेखा देख कर ज्योतिषी ने बताया कि अगर ये शादी कर लें तो उनकी किस्मत उस बीबी की बदौलत कुछ बदल सकती है। भगवान की मरजी कि उनकी मुलाकात किसी तरह से मिस हरनाम सेठ से हुई। वे भी मेरे ही अस्पताल में नर्स थीं। डाक्टर चारिया ने किसी तरह अपनी डिगरियों के बल पर मिस हरनाम सेठ को पटा लिया। उन्होंने हरनाम जी को यह बताया कि वे लगभग अविवाहित ही हैं क्योंकि यद्यपि लड़ाई के दरम्यान में वे कभी बाहर

एक ईसाई औरत से शादी कर चुके थे मगर बाद में उसे फिर उन्होंने तलाक दे दिया था और हिन्दोस्तान अकेले वापस चले आए थे। उनका मन डाक्टर चारिया में रम गया और उन्होंने उनसे शादी कर ली! इस तरह मिस हरनाम सेठ, मिसेज़ कैप्टन चारिया हो गईं।

'लेकिन फिर यहाँ, बनारस में कैसे आकर बस गए ?'

'इसकी भी एक कहानी है। इसीलिए तो कहती हूँ कि ज्योतिषी ने जो कुछ कहा था वह एकदम सत्य हुआ। मिस हरनाम सेठ की सेवा से दिल्ली के मारवाड़ी परिवार की एक महिला किसी बड़े कठिन रोग से मुक्त हुई थीं। अच्छा हो जाने के बाद वे मारवाड़ी बन्धु इसके लिए कुछ करना चाहते थे---ठीक उसी तरह जिस तरह हर मारवाड़ी लाभ होने पर कुछ करने की सोचता है। कुमारी हरनाम सेठ ने, जो अब श्रीमती हरनाम चारिया हो गई थी, उन्हें समझाया कि वे एक अस्पताल खोल दें जहाँ 'दीन दुखियों' की निस्स्वार्थ सेवा हो सके। अस्पताल खोलने की जगह तै हुई बनारस। अब उस निस्स्वार्थी सेवा के लिए किसी 'निस्स्वार्थी डाक्टर' की जरूरत पड़ी। आप समझ ही सकते हैं कि उसके लिए कैप्टन चारिया से बढ़कर निस्स्वार्थी आदमी कहाँ मिल सकता था ? इस तरह देखते देखते डाक्टर एस० चारिया इस 'सुभद्रा देवी धर्मार्थ अस्पताल' के इंचार्ज डाक्टर हो गए। कैप्टन चारिया चूँकि काफी बुद्धिमान हैं और पहिले की मुसीबत झेले हुए हैं इसीलिए उन्होंने उन मालिकों से तै कर लिया कि वे यावज्जीवन मालिकों की तरफ से कभी भी निकाले न जायँगे!'

'फिर आप यहाँ कैसे आईं ?'

'यह तो बिल्कुल ही साफ़ है। हरनाम जी चूँकि मुझे बेहद चाहती

थी और उनको मैं भी बड़ी बहन की तरह मानती थी इसलिए जब उन्होंने अपने पास रहने के लिए बुलाया तो मैं यहाँ आ गई। कैप्टन चारिया ने मुझे इसी अस्पताल में तब से लगा दिया है।'

नर्स सुब्बारंगिनी ने सेब की फाँकें काट काट कर घोरपड़े जी को खिलाना शुरू कर दिया था। घोरपड़े जी कह रहे थे—

'देखिए! आप बेकार मुझे इतना सेब खिलाती पिलाती जा रही हैं। मैं अपना वजन सदा एक सा रखता आया हूँ। आज तक उसे बढ़ने नहीं दिया। आप की जिद पर मेरा यह नियम टूटता जा रहा है।'

सुब्बारंगिनी ने दूसरी फाँक बढ़ाते हुए कहा—

'खाइए भी! आप तो जैसे हर चीज तौल तौल कर खाते हैं। क्या मनोविज्ञान पढ़ने वाला इसी तरह रहता है? आप तो वकील भी हैं। आप को तो दुनियाँ की तरह भी काम करना चाहिए। खाइए ...।' उसे आज उनका नियम तोड़वाने में एक आनन्द मिल रहा था।

घोरपड़े जी कुछ गंभीर हो उठे। उन्होंने कहा—

'देखिए मनोविज्ञान हमारे मानव मन के लिए अत्यन्त शुभ वस्तु है। बिना उसके तो हम जीवन की गुत्थियों को सुलझा ही नहीं सकते। वकीलों ने आजतक कभी इस दृष्टिकोण से देखा ही नहीं। इसीलिए उन्हें बहुत कुछ झूठ-सच मिलाना पड़ता है। इस विषय में अब मैं कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण गवेषणाएँ करने जा रहा हूँ। नर और मादा के संबंधों पर इधर मेरे विचार एक नए दृष्टिकोण से सामने आ रहे हैं। अचेतन मन का रहस्य मैं अब दुनियाँ के सामने खोल कर रक्खूँगा। कभी आप फुर्सत से रहिएगा तो मैं आपको मनोविज्ञान के गूढ़ अर्थ समझाऊँगा।'

जैसा कि जाहिर था, नर्स सुब्बारंजिनी उनकी बातों में कुछ भी नहीं समझी। उसने घड़ी की ओर देखा और उठ कर खड़ी हो गई। वकील साहब से उसने अब आराम करने को कहा और दरवाजे पर जाली का परदा ठीक करके वह कमरे के बाहर निकल गई।

○○ ○○ ○○

अब आइए दूसरा दृश्य देखिए।

यह एडवोकेट दामोदर विष्णु घोरपड़े के घर की बैठक है। कमरा अगर बत्तियों और सिगरेट के धुएँ से भरा हुआ है। मेज पर कुछ चाय के प्याले हैं। सामने के तख्त पर श्री गजानन चौधरी बैठे हैं। उन्हीं के पास महेन्द्र सिंह भी तकिये का हल्का सा सहारा लिए जमे हुए हैं। एक कुर्सी पर घोरपड़े जी और बगल की कुर्सी पर श्री कृष्ण माधव जी दिखाई पड़ते हैं। गजानन चौधरी–यथा नाम तथा गुण। महेन्द्र सिंह–नाम की विभीषिका चेहरे पर। कृष्ण माधव जी–सांवला चेहरा और दुबला पतला शरीर। अब आप की आँखों पर से परदा उठता है।

कृष्णमाधव––लेकिन घोरपड़े जी इस लेख में तो आपका दृष्टिकोण-ही बदल गया है। नर और मादा के विषय में तो आपकी धारणाएँ ही बिल्कुल उल्ट सी गई है।

(दामोदर जी का मुस्कराते रहना)

गजानन–(तख्त पर कुछ हुमकते हुए) हाँ, आखिर आप तो कहते थे कि मैं उस नीत्शे को मानता हूँ जिसने कहा कि हर मादा से जब मिलना चाहिए तो अपने हाथ में एक कोड़ा लेकर। अब आखिर क्या बात हो गई है?...हम लोग तो अब भी उसी

एक

बात को मानते चले जा रहे हैं और आप हैं कि रोज़ बदलते चले जा रहे हैं। आप कहीं टिकें तो आपके साथ दूसरे भी आयें।

कृष्ण माधव—आखिर आपने तो अपने इन निष्कर्षों को तमाम लोगों से मिल जुल कर, यहाँ तक कि 'ज़ू' में जाकर पशुओं तक पर 'एक्सपेरीमेंट' करके निकाला था। अब आप क्या वह सब कुछ नहीं मानते?

(दामोदर जी को पूर्ववत् मुस्कराते देखकर महेन्द्र नारायण जी का बोलना।)

महेन्द्र—नहीं दामोदर जी, आपको यह बात साफ करनी पड़ेगी कि आखिर आप नर और मादा के प्रति क्या दृष्टि कोण रखते हैं क्योंकि वह 'पालिसी' का सवाल हो जाता है।

दामोदर—देखो मित्रों! अब मैं क्या कहूँ? आदमी के विचार सदा बदलते रहते हैं। यदि वह न बदले तो मैं समझूँगा कि वह दिमाग एकदम ठस हो गया है। नर और मादा को मात्र नर और मादा की दृष्टि से देखने से काम नहीं चल सकता। मादा कहीं पर नारी भी हो सकती है। माँ भी हो सकती है और पत्नी भी हो सकती है।

महेन्द्र—यह सब दस पन्द्रह दिन के भीतर आपका दर्शन और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कैसे बदल गया है, इस पर आपको साफ बातें करनी होंगी जनाब।

कृष्ण माधव—(बात काटते हुए) नहीं नहीं ठीक तो है महेन्द्र जी। देखिए हो सकता है कि मादा और स्त्री में फर्क हो। घोरपड़े जी की बात भी तो पूरी सुन लीजिए।

गजानन—(खीजते हुए) तो यह नर मादा संबंधी खोज कहीं पर स्त्री के प्रति आपका आकर्षण तो नहीं व्यक्त करता ?

दामोदर—तुम भी कैसी बातें करते हो गजानन ? स्त्री और मादा में मैं बुनियादी फर्क मानता हूँ इसीलिए तुमसे कहता हूँ। स्त्री तो अपने साथ एक संस्कार लेकर चलती है। स्त्री एक परम्परा है किन्तु मादा तो संस्कारच्युत एक जड़ पदार्थ है। इसमें कोई चाहे रस ले या आकर्षण हो, लेकिन उसका दृष्टिकोण नहीं बदलेगा—वह तो सदा वैज्ञानिक ही रहेगा। मैं नर मादा की जगह नर-नारी को अधिक सुरुचिपूर्ण मानता हूँ।

गजानन—(हँसते हुए) हाँ अब मानने लगे होंगे।

दामोदर—देखिए ! विराट व्यक्तित्व का निर्माण करने के लिए यह आवश्यक है कि नर का नारी के प्रति एक सहज मानवीय दृष्टिकोण रहे। इसीलिए मैंने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को इस रूप में ग्रहण किया है। इसमें हँसने की कोई बात नहीं।

कृष्ण माधव—हाँ हाँ इसमें हँसने की बात नहीं है। लेकिन फिर आप तो अचेतन की बात भी उठाते हैं घोरपड़े जी।

महेन्द्र—वह सब ऐसे ही है।

दामोदर—नहीं नहीं मैं कह रहा हूँ कि अचेतन ही वह प्रेरणा शक्ति है जो नारी के प्रति सहज रुझान पैदा करती है। अभी क्या है, आप इसे तब समझेंगे जब मैं कोर्ट में इसे प्रमाण के रूप में रक्खूँगा और केस जीत कर दिखा दूँगा।

गजानन—और पशु जीवन ?

दामोदर—मानव विकास क्रम चूँकि एक चक्र में चल रहा है इसलिए बहुत सम्भव है कि पशु जीवन हमारे जीवन को फिर उसी तरह

छा ले जिस तरह वह पहिले छाया हुआ था. । इसलिए मैं पशु जीवन को अब भी मानव जीवन का एक पूरक अंग मानता हूँ।

महेन्द्र—लेकिन आपकी 'थ्योरी' तो अचेतन और पशु जीवन के साथ अखबार को भी समेटती है।

दामोदर—हाँ हाँ क्यों नहीं। आज अखबार हमारे मन को बहुत कुछ ढालता है। इसलिए वह तो हमें निर्देशित करता है। वस्तुतः इन्हीं तीनो के सम्मिश्रण से मानव प्राणी का जीवन दर्शन बनता बिगड़ता है। हमारी मूल प्रवृत्तियाँ इन्हीं तीनों-अचेतन, पशु जीवन, और अखबार से ही परिचालित हैं।

महेन्द्र—मैं तो इसको नहीं मानता। नर और मादा के संबंधों में इधर जो आपने अपना दृष्टिकोण बदला है उसे मैं मानने से इन्कार करता हूँ।...क्यों?...यह फिर बताऊँगा।...चलो गजानन भाई।.... (गजानन उठकर खड़े हो जाते हैं फिर दोनों नमस्कार करके चल पड़ते हैं। अकेला पाकर कृष्ण माधव जी फिर बोलते हैं।)

कृष्ण माधव—आखिर महेन्द्र जी आज मान क्यों नहीं रहे थे?

दामोदर—शायद मैं ही ठीक से नहीं कह पाया।...देखो कृष्ण माधव, मैं तुमसे कहता था न, अगर आदमी का 'वेट' बढ़ जाय तो उसकी बुद्धि मोटी हो जाती है। न वह दूसरे की बात समझ पाता है और न अपनी बात ठीक से समझा पाता है। मेरा वज़न इधर जो दो पाउंड बढ़ गया है, उसका फल आज प्रत्यक्ष दिखाई पड़ गया है। मेरा तो ख्याल है कि इधर महेन्द्र जी का भी वज़न जरूर बढ़ गया है।

कृष्ण माधव—हाँ हो सकता है। रामलाल एण्ड संस के यहाँ से एक

सप्ताह पहिले इनको एक शीशी टॉनिक की मैंने ही दिलवाई थी। कहते थे दिमागी कमजोरी है।

दामोदर——क्यों दिलवाई? वही तो सब झगड़े की जड़ है। अब जब तक हम दोनों का दिमाग और 'वेट' नार्मल न होगा तब तक एक दूसरे की बात समझना बड़ा कठिन होगा।

इसके बाद दोनों घूमने चले गए। आपकी आँखों पर फिर परदा गिर जाता है।

०० ०० ००

शाम का वक्त है बनारस के चित्रा टाकीज के सामने काफी भीड़ भाड़ है। कोई ऐसी तस्वीर लगी है कि लोगों को आज अपनी रोटी की फिक्र भी नहीं है। सब तरफ एक हंगामा का आलम छाया हुआ है। इतन में एक रिक्शा आकर रुकता है। रिक्शे तो कई आ आ कर रुक रहे हैं मगर यह वह रिक्शा है जिसे आपको देखना चाहिए। इसमें से उतर रहे हैं दामोदर घोरपड़े। उतरे और इधर उधर चौकन्ने हो देखते हुए से एक तरफ खड़े हो गए हैं। अब जितने भी रिक्शे रुकते उन सब पर घोरपड़े जी की निगाहें गड़ी हुई हैं। आखिर इस रिक्शे को देख कर वह खुश हो गए। इसमें से मिस सुब्बारंजिनी उतर रहीं हैं। उन्होंने भी इधर उधर देखना शुरू किया। लपक कर घोरपड़े जी पास पहुँचते हैं और कहते हैं——'आ गई आप, मुझे तो बड़ा डर लग रहा था कि कहीं डाक्टर चारिया रोक न दें।'

'कैप्टन चारिया को तो हमने बताया भी नहीं। झुटपुटा होते ही हम घूमने चल दिए। हरनाम जी से कह दिया था कि देर में लौटूंगी। बस!'

'आइए पिक्चर शुरू होने वाली है। यह लीजिए दो टिकट ले

लीजिए। उधर लेडीज़ के लिए सुविधा है।' पर्स से पैसे दे देते हैं।

मिस सुब्बारंजिनी जल्दी जल्दी टिकट ले आती है। टिकट लाकर चलने के लिए कहती है।

'नहीं मेरा टिकट दे दीजिए। मैं अलग बैठूँगा। जब रोशनी बुझ जायगी तब आपके पास आ जाऊँगा। मेरे लिए अपने बगल में एक सीट रोके रखिएगा।'

'क्यों?'

'हर बार क्या वही बात बतानी पड़ेगी? पिछली बार ही आपको बता दिया था कि रोशनी रहते आपके साथ नहीं बैठूँगा—दूसरे बहुत से वकील पिक्चर में आते हैं।'

'अच्छा!' कह कर दोनों सिनेमा हाउस के भीतर अलग अलग घुस जाते हैं।

०० ०० ००

कैप्टन डाक्टर चारिया के घर के सामने वाले चबूतरे पर उस दिन दो चार कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं। एक मेज पर सामने कुछ संतरे और कटे हुए सेब रक्खे थे। कुर्सियों पर कैप्टन चारिया, श्रीमती हरनाग चारिया और वकील दामोदर विष्णु घोरपड़े बैठे हुए थे। बात-चीत में ठहाकों का सिलसिला जारी था। थोड़ी देर में चाय आ गई। चाय के प्याले सबके हाथों में आ गए।

श्रीमती हरनाग चारिया ने कहा—

'वकील साहब तो अगर आप का यह अचेतन मान भी लूं तो फिर औरतों के बारे में जो आप कहते रहे हैं, वह तो सब झूठ हो जायगा।

चाय की चुस्की लेते हुए घोरपड़े हँस पड़े—

'आप भी भाभी जी कैसी बातें करती हैं ? औरत औरत ही है वह चाहे कुछ हो जाय। मैं तो विशुद्ध वैज्ञानिक ढंग से उन्हें देखता हूँ ।

कैप्टन चारिया दोनों की बातें बहुत देर से सुन रहे थे । एकाएक अपने पंजाबी लहजे में 'हो हो' करके हँसते हुए बोले—

'यार तुम भी अजीब अहमक आदमी हो ! अरे मियाँ शादी कर लो ! मौज से जिन्दगी बिताओ ! कहाँ रात दिन तुम गधों और घोड़ों के बीच अपनी जवानी बरबाद कर रहे हो ! हजरत ! गधे और घोड़े भी अपनी जवानी में इस तरह की बातें नहीं करते जिस तरह की बदहवासी तुम पर छाई हुई है ! संतरे का जूस पियो। अपने आप जवान हो जाओगे ! ! अरे साहब ! औरत कुछ चीज ही और होती है ! है न हरनाम ?'

अपना भाषण समाप्त करते ही डाक्टर चारिया इतनी जोर से हँसने लगते थे कि उनकी मोटी तोंद पतलून की सीमाओं को तोड़ फोड़कर बाहर निकलने के लिए उछलने कूदने लग जाती। अपना हर भाषण समाप्त कर लेने के बाद वे अपनी पत्नी से कहते—

'भई, हमारे प्याले में थोड़ी और शकर डालना हरनाम !'

घोरपड़े उनकी इस आदत से वाकिफ हो गये थे। जब कभी वे भाषण देने लगते तो वे चम्मच में चीनी लिए तैयार रहते। जैसे ही उनका भाषण समाप्त होता वह 'स्वाहा' कहकर उनके प्याले में चीनी डाल देते ! इस पर तीनों ही थोड़ी देर के लिए हँसा करते।

डाक्टर चारिया ने फिर एकदम सीधी बात चलाई—

'भई देखो ! तुमने सुब्बारंजिनी को तो अच्छी तरह देख लिया है। इतनी बार मेरे घर पर तुमने देखा । अस्पताल में देखा। अब

तो तुम लोग सिनेमा वगैरह घूमने भी जाते हो! अच्छी तरह उसे जान लिया होगा। उससे शादी हो तो कैसा रहे?'

घोरपड़े एकदम चौंक पड़े। उनके मन का चोर इतनी जल्दी पकड़ लिया जायगा, यह वह नहीं जानते थे। फिर भी वे घबड़ाए नहीं सिर्फ मुस्कराते रहे।

घोरपड़े जी की आँखों के सामने पच्चीस वर्षीया सलोनी सुब्बा-रंजिनी का चेहरा नाचने लगा। मिस सुब्बारंजिनी का साँवला रंग लेकिन भरा पूरा गुदगुदा शरीर और फिर उसकी बड़ी बड़ी आँखें जो कितने ही रोगियों को अच्छा होने की प्रेरणा दे चुकी होंगी, वह सब कुछ घोरपड़े के मन पर छा गया। नर्स होने के बावजूद भी उसमें कितनी कलात्मकता थी। जिस सुरुचिपूर्ण ढंग से वह बातें करती थी वह घोरपड़े जी के लिए एक भयानक आकर्षण बन गया था।

श्रीमती हरनाम चारिया ने सूत्र आगे बढ़ाया—

'तुम तो सुब्बारंजिनी को जान ही गए होगे। बेचारी की माँ अब भी कुर्नूल में कहीं रहती है। किसी तरह मेहनत मजदूरी करके उसने इसे पढ़ाया लिखाया। बचपन से ही इसे 'फ्लोरेंस नाइटिंगेल' का जीवन बड़ा अच्छा लगता था। आज तक वह उसी से प्रभावित है! बड़ी होने पर यह नर्स बन गई ताकि अपने पैरों पर खड़ी हो सके। इधर उत्तरी हिन्दुस्तान में जब से रही तब से तो यह खूब हिंदी बोलना चालना भी सीख गई। अब तो खूब लिख पढ़ भी लेती है। मन से इतनी आर्टिस्टिक है कि इसने अपना नाम बदल कर सुब्बा-रंजिनी कर लिया है। कहती है रंजिनी कहलाना अच्छा लगता है। काम पर से लौटती है तो बिना एकाध घण्टा वायोलिन बजाए आराम नहीं करती! मुझे तो बड़ी अच्छी लगती है! क्या कहूँ मुझे तो यह तुम

दोनों का जोड़ा भी बहुत अच्छा लगता था लेकिन तुम शादी के लिए ही तैयार नहीं हो! शादी कर लो, तुम्हारा घर भी बस जायगा! ऐसी लड़की आसानी से ढूँढे नहीं मिलेगी।'

डाक्टर चारिया ने चाय का दूसरा प्याला भरते हुए कहा—

'नहीं भई हरनाम! तुम समझती नहीं हो! अपना यह दामोदर अब तक यह जानता नहीं था कि औरत होती क्या चीज़ है? अब समझ गया है! अब जान गया है कि औरत में ऐसा क्या होता है कि जिसके पीछे सब दीवाने रहते हैं! इसी से कहा था मैंने यार! यह सब तुम्हारी 'साइकूलीजी' और 'पैथूलीजी' एक तरफ और जनाब......' पंजाबी लहजे में अँग्रेजी नामों को लेते हुए जैसे किसी निगूढ़ संकेत को पाकर वे फिर 'हो हो' करके हँस पड़े।

अब घोरपड़े के बोलने की पारी थी। कुछ-कुछ शरमाते हुए आँखें नीची करके बोलने लगे—

'देखिए सिद्धांत रूप में तो मैं औरत को चीज कुछ और मानता हूँ लेकिन रंजिनी जी की बात ओर है। उन्होंने तो अपने आपको बहुत सुसंस्कृत कर लिया है! उनके बारे में मुझे खास आपत्ति नहीं है। मैं तैयार हूँ। लेकिन उनकी माँ अपनी आंध्र बेटी की शादी किसी महाराष्ट्र से करने को भला तैयार होंगी? इस वक्त हम तीनों ही एक दूसरे की कट्टरता के बारे में कुछ नहीं जानते! आप लोग पंजाबी, वे आंध्र और मैं महाराष्ट्र! फिर यह घटना घट रही है उत्तर प्रदेश में! यह तो एक तरह का अंतर्प्रांतीय सांस्कृतिक आदान प्रदान है—अंतर्प्रांतीय सम्मेलन कह लीजिए!'

घोरपड़े जी अपने इस मज़ाक पर खुद ही हँस पड़े।

श्रीमती हरनाम चारिया ने कहा—

'खैर वह जाने दीजिए! अगर आप तैयार हों तो आगे सारी बातें हो जायंगी। मैं उसकी माँ को तैयार कर दूंगी। आपके ही घर वाले कहीं न मानें, तो क्या होगा?'

घोरपड़े ने कहा—

'मेरा कौन यहाँ बैठा है? एकाध है भी सो पूने और नागपुर में है। यहाँ तो जो मैं कहूँ वही मेरे घर वालों की भी राय माननी चाहिए।'

डाक्टर चारिया फिर बोल पड़े—

'बम बम हरनाम! अब बहस मत करो! इंतिजाम करो! रंजिनी की माँ को भी 'इन्फार्म' कर दो! ठीक है। 'इण्टर स्टेट मेरिज' होनी चाहिए और वह भी 'हिन्दुस्तान' में ही ठीक रहेगी! यहाँ का आदमी बड़ा अच्छा होता है। दूसरों को देख देख खुद भी समझ लेता है!'

डाक्टर चारिया उत्तर प्रदेश को हमेशा 'हिन्दुस्तान' कह कर पुकारते थे। 'हिन्दुस्तान' का मतलब समझकर घोरपड़े फिर मुस्करा पड़े।

पूने के दामोदर घोरपड़े अब बनारस के दामोदर विष्णु घोरपड़े उर्फ वकील साहब हो गए थे। इस घटना के पीछे बात सिर्फ इतनी सी थी कि दामोदर के पिता विष्णु पाण्डुरंग घोरपड़े जजी से पेंशन पाने के बाद सपत्नीक काशी निवास करने आ गये थे। दामोदर की शिक्षा काशी में हुई। जज विष्णु पाण्डुरंग घोरपड़े अपने लड़के को भी हाईकोर्ट का जज होते हुए देखना चाहते थे इसीलिये उन्होंने उसे वकालत की शिक्षा दिलवाई और वकालत करने के लिये मजबूर किया। मगर भाग्य की बात कि जब तक घोरपड़े जी ने वकालत पास की,

मुहब्बत मनोविज्ञान और मूँछ दाढ़ी

उसी बीच एक दिन विष्णु पाण्डुरंग घोरपड़े ने अपनी पत्नी के साथ गंगा माता की गोद में जलसमाधि ले ली । दामोदर घोरपड़े बड़े सुलझे हुए आदमी थे। पिता के जोर देने पर उन्होंने वकालत पास जरूर की लेकिन जमकर वकालत कभी नहीं की। गाहे बगाहे कचहरी जा जाकर उन्होंने सिर्फ 'वकील' साहब' का नाम कमा लिया था। खुद बाप की कमाई ही इतनी थी कि जिंदगी भर वह खा पी सकते थे! उनकी रुचि मनोविज्ञान की तरफ जरूरत से ज्यादा थी। वे उसी के अध्येयता के रूप में प्रसिद्धि पाना चाहते थे। इसीलिये उन्हें अपनी वृद्धा माता और आयुग्रस्त पिता के निधन पर कुछ विशेष शोक नहीं हुआ। उनका विश्वास था कि कुछ समय के बाद माता पिता का पुत्र की राह से हट जाना ही दोनों पक्षों के लिये श्रेयस्कर तथा लाजबचावकर होता है!

वकालत की तख्ती लटका कर श्री घोरपड़े अपने मनोविज्ञान में इस तरह उलझ गए कि न तो उन्हें दीन की खबर रह गई और न दुनिया की। वे अपने को आचरणवादी मनोवैज्ञानिक बताया करते थे। चेतन और अचेतन मन को समझने के लिये वे वकीलों की तरह ऐसा तर्क जाल बाँधते कि जो कुछ चेतना उनमें बाकी थी, वह भी अवसर पाकर जड़ हो जाती थी।

आदमी के उठने बैठने, चलने फिरने में, काम करने में, न करने में, सब चीज में उन्हें एक रहस्य दिखाई पड़ता था! इसी रहस्य को वे खोज कर बाहर निकाल लाना चाहते थे। कोई आदमी किसी खास तरह का कोट क्यों पहिने है, अमुक व्यक्ति इतने लम्बे बाल क्यों रखाता है, अमुक व्यक्ति मास्टरी क्यों करता है, अमुक व्यक्ति लेखक क्यों हो गया है, इस सबका रहस्य वे इस तरह ढूँढने पर

आमादा रहते कि जैसे वे कोई खुदाई जासूस हों। इन रहस्यों के उद्‌घाटन के लिए वे आदमियों तक ही नहीं रह पाते थे। इसके लिए तो वे पशुओं की शरण में जाने से भी नहीं हिचकते थे। उनका विश्वास था कि पशु जीवन फिर लौटेगा। मानव मन उसी ओर विकसित हो रहा है।

घोरपड़े अभी ताजा ताजा वकालत पास शुदा तीस वर्ष के मँझोले कद के, गोरे रंग के और छानबे पौंड वजन के आदमी थे। स्वास्थ्य अधिक बढ़ जाने से न सिर्फ मनुष्य भौतिकवादी हो जाता है बल्कि वह दूसरों को अपनी बातें नहीं समझा पाता, ऐसा उनका कहना था। इसीलिए वे अपने लिए हमेशा नपातुला भोजन ही स्वीकार करते थे। जब कभी वजन घट बढ़ जाता था तो वे अपने मनोवैज्ञानिक ढंग से उसका उपचार कर लेते थे। एक बार जब उनका वजन बढ़ा तो स्वयं अपने ऊपर उन्होंने अपना कलम चुरा लेने का लांछन लगा दिया था। इसमें उन्हें जितना मानसिक क्लेश हुआ था, उसके फलस्वरूप उनका वजन अपने आप तीन पौंड घट गया था।

नर मादा संबंधी उनकी गवेषणाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण थीं। उनके सिलसिले में उन्होंने कुछ इतनी रोचक बातें कहीं और लिखीं थीं कि उनके चारों ओर उनके प्रशंसकों का एक बहुत अच्छा दल तैयार हो गया था। यूँ भी घोरपड़े का व्यवहार, उनकी चाल ढाल, उनके कपड़ों का न्यारा ढंग, उनके तौर तरीके सब कुछ लोगों को उसी तरह खींचते थे जिस तरह किसी प्राइम मिनिस्टर की अगवानी में प्रेस रिपोर्टर दौड़ पड़ते हैं। घोरपड़े को पूरी आशा थी उनका यह पशुओं का अध्ययन किसी न किसी मानव स्वभाव का वह गुह्य रहस्य खोलेगा जिससे वे संसार के सर्वोत्कृष्ट मनोवैज्ञानिकों

में गिने जायेंगे। पशुओं में भी वे बहुत ज्यदा रुचि रखते थे। नर और मादा को आधार बनाकर नए दृष्टिकोण से वे उसे सामने रखना चाहते थे। घोरपड़े जी के सभी मित्र इस मामले में उनके शिष्य थे! वैसे तो उनके शिष्यमित्र अनेक थे किंतु कृष्णमाधव जी इस तजुर्बे के लिए—अपने मित्रगुरु के लिए—एक बार नर से मादा और अनेक बार मनुष्य से पशु बनने के लिए तैयार हो जाते थे। उन्हें घोरपड़े जी के प्रति अटूट आस्था थी। जहाँ तक घोरपड़े अब तक पहुँचे थे वहाँ से वे एक ही बात कहते थे कि मानव मन अचेतन, पशु प्रवृत्ति और अखबार से ही निर्देशित है। इन्हीं के संतुलन में उसका भविष्य निहित है। यदि यह ठीक से जान लिया जाय तो अपराध प्रवृत्ति का पता अपने आप लग जाया करे।

मनोवैज्ञानिक होने के बावजूद घोरपड़े कभी-कभी बीमार भी पड़ते थे। उनके घर से चार कदम पर यह 'सुभद्रा देवी धर्मार्थ अस्पताल' था। मात्र भौगोलिक स्थिति—अर्थात् निकटता के कारण उनका सम्पर्क इस अस्पताल से और फिर आगे चलकर कैप्टन चारिया से हुआ। चारिया में उन्हें कुछ वे मनोवैज्ञानिक तत्व मिले जिन्हें वे अक्सर लोगों में ढूँढा करते थे लेकिन नहीं पाते थे। इसीलिए डाक्टर चारिया से उन्होंने अपनी मित्रता बढ़ाई। कैप्टन चारिया इस नौजवान को पकड़ कर अक्सर समझाते कि 'देखो विटामिन डी खाने से आदमी जिद्दी नहीं रह जाता। 'विटामिन ए' और 'हरी सलाद' खाने से कुछ ही दिन में आदमी औरतों से विरक्ति ले लेता है। संतरे का जूस पीने से उसे स्त्रियाँ अच्छी लगने लगती हैं' आदि। डाक्टर चारिया हर बात का उपचार सिर्फ विटामिन की गोलियों और आहार के संतुलन से बताते थे। वे कहते थे कि उनके पंजाब में इसीलिए लोग

कम बीमार पड़ते थे क्योंकि वहाँ मरीज खाने पर ज्यादा जोर देते थे ।

इसके बाद डाक्टर चारिया के घर घोरपड़े जी आने जाने लगे। मिसेज़ चारिया को भी घोरपड़े जी काफी पसंद आए। हर आदमी जो यह सुनता कि घोरपड़े जी आदमी को खून मांस और हड्डी का बना न मान कर अचेतन, पशु प्रवृत्ति और अखबार से बना मानते हैं, उनके लिए घोरपड़े जी हमेशा एक अजूबा की तरह आकर्षक रहते। मिसेज़ हरनाम चारिया ने उनको अपने घर पर बुलाना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे घोरपड़े का मन वहीं रमने लगा। मिसेज़ चारिया ने ही इनका परिचय नर्स सुब्बारंजिनी से कराया और चाहने लगीं कि इनका विवाह उससे हो जाय। इन्हें उसके लिए पूरी छूट भी मिली। आखिर विवाह भी तै हो गया, जैसा आप जान गए हैं!

इस तरह चारिया दम्पत्ति ने ऐसा प्रबंध किया कि अगले पंद्रह दिन के भीतर शादी हो गई। चूँकि घोरपड़े जी अखबार को भी मानव जीवन का एक आवश्यक अंग मानते थे इसलिए उन्होंने अपने विवाह का समाचार बनारस के एक अखबार में छपवा दिया। उसमें यह भी लिखवाया कि 'जिन्हें इस अंतर्प्रांतीय सांस्कृतिक आदान प्रदान में रुचि हो वे श्री घोरपड़े के विवाह में सम्मिलित हो सकते हैं ।'

खुला निमंत्रण पाकर 'हिन्दुस्तानी' शिष्यमित्रों का एक खासा दल अपनी अपनी शुभ कामनाएँ लेकर पहुँच गया। मिसेज़ हरनाम चारिया ने इस अवसर पर एक दावत का भी प्रबंध किया । अस्पताल के सारे कर्मचारी और मित्रों ने भरपेट खाया । मगर जिस तरह होटल में बैठकर डबल रोटी उड़ाने वाले बाबुओं को गेहूँ उगाने वाले किसान की मेहनत का अंदाज़ा नहीं हो पाता, उसी तरह इन शिष्यमित्रों

को भी यह पता नहीं चल पाया कि इस सांस्कृतिक आदान प्रदान के पीछे घोरपड़े की कितनी मेहनत छिपी हुई है। जो कुछ भी हुआ सबने उस पर बहुत आनन्द मनाया। कुछ ने घोरपड़े जी की इस कार्यवाही को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने की भी कोशिश की लेकिन सभी आवश्यक आँकड़े न पाकर वे अपने प्रयत्न में विफल रहे और अंततोगत्वा आश्चर्य चकित होने के अलावा उनके हाथ कुछ और न आया।

o o o

दो

शादी के बाद एक सप्ताह तक भेंट न होने के कारण गजानन चौधरी दामोदर घोरपड़े के घर पहुँचे। दरवाजे पर ही उन्हें एक नई तख्ती दिखाई पड़ी। लिखा था :

सेवक इस समय कार्य में व्यस्त है। कृपया अपना संदेश भृत्य से कहें।

सेवक

दामोदर विष्णु घोरपड़े

गजानन चौधरी इसे पढ़ कर कुछ चौंके मगर उन्होंने हिम्मत करके दरवाजे की कुंडी खटखटा दी। नौकर निकला। पूछा 'क्या काम है?'

गजानन चौधरी को कुछ बुरा लगा—

'काम क्या है? शादी के बाद से दिखाई नहीं पड़े। बधाई देने आया हूँ। और क्या?'

नौकर ने कहा—यहीं बैठक में बैठिए। इस कागज़ पर आप भी अपनी बधाई लिख दीजिए।'

इतना कह कर वह एक तश्तरी में चार लड्डू और एक गिलास पानी ले आया। साथ में एक कागज़ भी था जिस पर कई आदमियों के नाम लिखे हुए थे। गजानन जी ने रुँधे गले से सब खा लिया और फिर पानी पीकर बिना बधाई लिखे वे बुरा मान कर जाने लगे।

नौकर ने उनसे प्रार्थना की—

· साहब आप अपना नाम लिख कर ही जाइए नहीं तो हमारे ऊपर हुजूर बहुत बिगड़ेंगे। अब तक जो भी आए हैं और लड्डू खा कर गए हैं वह सब लोग अपनी-अपनी बधाई कागज पर लिख गए हैं। साहब, लिख जाइए नहीं तो मेरी नौकरी पर आँच आ जायगी।'

गजानन चौधरी लड्डू खा चुके थे। हार कर उन्हें बधाई वाले कागज़ पर अपने भी हस्ताक्षर करने पड़े।

शादी के बाद दो हफ्ते तक दामोदर घोरपड़े को कोई नहीं देख पाया। इस दो हफ्ते की अवधि के भी दो भाग थे। पहिला भाग एक हफ्ता एक दिन का और दूसरा भाग था सिर्फ पाँच दिन का। पहिला भाग जो एक हफ्ते एक दिन का था वह तो उन्होंने घर के भीतर सिर्फ अपने कमरे में बिताया था। इस अवधि में ही तो घर का नौकर भी 'साहब' और 'मेम साहब' का चेहरा देखने को तरस गया था। हाँ दूसरा भाग अलबत्ता जो सिर्फ पाँच दिनों का था, वह उन्होंने कमरे से बाहर किंतु घर की चहार दिवारी में ही बिताया था। इस समय उनका और रंजिनी जी का चेहरा देख पाने वाले दो जीव थे—एक तो उनका नौकर और दूसरे उनके परम भक्त कृष्णमाधव जी!

कृष्णमाधव जी नेक जीव थे। स्वभाव के बड़े मृदुल थे। किसी के लिए काम आ जाना उनके लिए एक बान हो गई थी। कृष्णमाधव जी बनारस के पुराने रहने वाले थे। चूँकि वे पुराने जमाने से बनारस के रहने वाले थे इसलिए वे यह भी अच्छी तरह जानते थे कि किस गली में कौन पान वाला पान में कितना कत्था लगाता है और कितना चूना; किस गली में बढ़िया तम्बाकू मिलती है और किस गली में अच्छी रौनक; किस गली में कचौड़ी बढ़िया मिलती

है और किस गली में गर्वपाचक हिंगाष्टक चूर्ण——यह सभी बातें उन्हें इस तरह याद थीं कि जैसे वे बनारस की चलती फिरती इनसाइक्लोपीडिया हों। जानकारी के इस अद्भुत गुण के बावजूद भी मनोविज्ञान में वे गहरी रुचि रखते थे! बनारस का रहनेवाला चाहे डिगरियाँ न ले चुका हो मगर कला और संस्कृति तथा ज्ञान विज्ञान में रुचि रखना उसके खून की तासीर मानी जाती है! इसी मनोविज्ञान के ही कारण कृष्णमाधव वकील साहब के घनिष्ट मित्र हो गए थे। नर मादा संबंधी खोजों में उन्हें भी दिलचस्पी हो चली थी। कृष्ण-माधव के लिए यह प्रसिद्ध था कि वे जिस पर द्रवित हो जायें और जो उनकी नजरों में चढ़ जाय उसके लिये वे संजीविनी बूटी लाने जाड़े की एक बजे रात में भी जिस तेजी से जायेंगे, उसके सामने हनुमान जी भी मात खा जायँ!

विवाह के एक हफ्ते के बाद, एक हफ्ते एक दिन तक तो अपनी हर कोशिशों के बावजूद भी कृष्णमाधव जी घर में न घुस पाये और उन्हें बाहर ही बाहर लड्डू खाकर और कागज पर हस्ताक्षर करके ही संतोष करना पड़ा। लेकिन जैसे ही पहिला मौका मिला वे तत्काल घर में दाखिल हो गए। उनके चिरंतन धैर्य और साहस ने यह दिन उन्हें दिखला कर छोड़ा कि वे अपना चोला मानव सेवा के हित अर्पण कर सकें।

नई नई दुल्हन लाने के बाद बाजार हाट में घूमने की प्रायः जरूरत पड़ती रहती है इसीलिये कृष्णमाधव को घोरपड़े जी ने खास तौर से अपनाया। कृष्णमाधव जी का चोला आगे कैसे विराटता के निर्माण में लगा यह राज भी खुलेगा।

उस दिन छत पर वकील साहब अकेले थे। झुटपुटा हो

चुका था । कचहरी से लौट कर वे यूँ ही अकेले कुछ गुनगुनाते हुए टहल रहे थे। कहीं जाने के लिए श्रीमती सुब्बारंजिनी तैयार हो रही थीं और उस बीच की प्रतीक्षा वकील साहब छत पर टहल कर बिता रहे थे। सहसा घर के सामने वाले पीपल पर उन्हें कुछ खड़ खड़ महसूस हुई। उन्हें भ्रम हुआ कि जैसे कोई छाया सी उतर रही है। वे डर के मारे पास पड़ी एक बँसखट पर बैठ गए। उनके कानों में लगा कि उनकी आत्मा कुछ कह रही है। वे सुन रहे थे :

'रे मूढ़! तूने असंभव को संभव कर दिखाया! ईश्वर के नियमों को तूने तोड़ डाला। जो बात कोई नहीं करता या कर पाता उसे तूने करके दिखाया, यह तूने अच्छा नहीं किया।'

आत्मा की इस चीत्कार से वह डर गए! पर वे मनोवैज्ञानिक भी थे। फौरन अपने मन की तहों को उधेड़ कर देखने लगे। अपनी प्रेयसी को दैवी चमत्कार से सभी उपन्यासों और सिनेमा कथाओं को झूठी साबित करती हुई मनोवैज्ञानिक वकील ने अपनी पत्नी के रूप में जब से पा लिया था तभी से उनके आत्मा के तार झनझना रहे थे!

वे आत्मा पर विश्वास करते थे मगर भूत चुड़ैल पर नहीं। घबड़ाए नहीं। हिम्मत बटोर कर उसी बँसखट पर बैठे बैठे सोचने लगे कि जिस महान तत्व को पाने में असमर्थ जाने कितने ही प्राणी दुराचारी, कवि और आत्मघाती हो जाते हैं, उस सहज-प्राप्त-संपदा को पाकर उन्हें तो अब कोई ऐसा काम करना चाहिए जिसमें उनकी आत्मा का निखार हो और वे मानवता की प्रगति में एक मील के पत्थर गिने जायँ। घोरपड़े जी ने अपनी मनोविज्ञान की दिमागी थैली टटोली। उन्हें सहसा सूझा कि ऐसे संयोग पर एक ही काम किया जा सकता है और वह है—एक विराट व्यक्तित्व का निर्माण!

'अरे चलोगे भी कि बस ऊपर छत पर ही टहलने के लिये मुझे तैयार कराया है ?' कमरे से सुब्बारंजिनी की पुकार सुन कर वकील साहब चौंक पड़े।

वे सोच रहे थे कि विराट व्यक्तित्व के निर्माण के लिये उन दोनों को तन मन धन से एक हो जाना पड़ेगा। ऐसा नहीं होगा तो कुछ नहीं हो सकता! विवाह होने के बाद वे तन और धन से बिल्कुल एक हो गए थे। अब रहा सहा मन भी वे एक कर डालने की बात सोचने लग गए थे।

'क्या सो गए? अरे मैं तैयार खड़ी हूँ! सुनते हैं आप?' दूसरी आवाज सुन कर वकील साहब नीचे उतरने लगे। इसी बीच उन्होंने तै कर लिया वे अधिक से अधिक साथ रह कर अपने विराट व्यक्तित्व का निर्माण कर सकेंगे!

'वाह! आपको क्या हो गया? मैं कब से पुकार रही थी और आप हैं कि ऊपर जाकर सो गए!' सुब्बारंजिनी ने उलाहने देने शुरू किये।

'कुछ नहीं, कुछ नहीं! ऐसे ही कुछ सोचता रह गया। चलो पिक्चर चलेंगे!'

दोनों तैयार होकर घर से बाहर निकल गए।

घोरपड़े ने रिक्शा किया। दोनों साथ साथ बैठे। आज उन्होंने रिक्शे का 'कवर' नहीं चढ़ाया। खुले रिक्शे में दोनों साथ-साथ चले। रास्ते में जितने भी वकील साहब के परिचित मिले, जिनसे उनकी सिर्फ एकाध बार की भी भेंट पहिचान थी, उनको भी वे रास्ते भर पुकार पुकार कर नमस्कार प्रणाम करते रहे। सिनेमा घर पहुँच कर दोनों ने टिकट लिया और साथ साथ जाकर बैठे। इंटरवल होने पर

आज घोरपड़े उठकर भागे नहीं बल्कि जितने भी परिचित वहाँ बैठे दिखाई पड़े उन्हें घर घेर कर अपनी उपस्थिति की जानकारी कराई। घोरपड़े जी अब विराट व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहते थे।

वैसे तो वकील साहब बैठे बैठे सिनेमा देखते रहे मगर उन्होंने उसे देख कर भी नहीं देखा। वे बराबर यही सोचते रहे कि वे अपना मन किस तरह मिला सकते हैं। मनोविज्ञान का इतना अध्ययन करने के बावजूद भी यदि वे मन मिलाने में भी असमर्थ रहे तो यह सब कुछ अकारथ है!

दूसरे दिन उन्हें यह गुर हाथ लग गया कि यदि मन से विरोध करने की शक्ति एकदम हटा दी जाय, और प्रवृत्तियों पर संयम रक्खा जाय तो शायद मन मिल जाय। इसके लिये उन्होंने अपनी 'मानसिक-ट्रेनिंग' उस स्तर पर करना शुरू कर दिया जिससे उन्हें कोई क्लेश न उठाना पड़े।

रंजिनी किसी काम के लिये कहतीं तो घोरपड़े जी तत्काल हुँकारी भर देते। मगर वे दरअस्ल स्थिति वह लाना चाहते थे कि एक के मन में सिर्फ विचार मात्र आए तो दूसरा उसे व्यक्त कर दे। यदि घोरपड़े जी यह इशारा भी समझ जायें कि रंजिनी अपनी सहेली कुमारी के घर जाना चाहती हैं तो वकील साहब कह पड़ें---

'बहुत दिनों से कुमारी का कोई हाल नहीं मिला। न हो तो आज उसी के घर हो आया जाय!'

इस तरह सोचने के लिये सबसे पहिली बात तो यह जरूरी थी कि अपने ऊपर हर तरह से जब्र किया जाय और अपने विचारों को उठने ही न दिया जाय।

सुल्बारंजिनी को बाजार जाना और अपनी गृहस्थी के लिये सामान

जुटाना बड़ा अच्छा लगता था। घोरपड़े इस बात को जान गये थे। अक्सर जब वे कचहरी से लौटते तो वे खाली वक्त जान कर उन्हें बाजार चलने का ही निमंत्रण दिया करते थे। इसी अवसर पर कृष्णमाधव जी का 'नर चोला' भी सार्थक सिद्ध होता था। बाजार जाने का कार्यक्रम जिस दिन होता, उस दिन वकील साहब कृष्णमाधव जी को जरूर पकड़ लाते थे। क्योंकि वे उनकी जानकारी के फन से अच्छी तरह वाकिफ थे। चूँकि वकील साहब जानते थे कि रंजिनी का मन बाजार जाने के लिये अक्सर उत्सुक रहता था इसलिये वे प्रायः यह भी बता दिया करते थे कि आज अमुक कारणों से बाजार चलना जरूरी है अन्यथा बड़ी हानि होने की संभावना है। बाजार में यदि कहीं पर रंजिनी ठिठक कर खड़ी हो जातीं तो घोरपड़े जी का फर्ज होता कि वे उस दूकान की सारी चीजों का दाम, एक के बाद दूसरी, पूछते ही चले जायें। कृष्णमाधव जी भी जब साथ में होते तो 'मारकेटिंग' में कुछ अधिक रस मिलता। वे तो दूकान की हर एक चीज इस तरह उठा उठा कर इस युग्म को दिखाते गोया बनारस की हर दूकान उन्होंने ही लगवाई हों!

रंजिनी को जब कोई चीज अच्छी लगी तो मन मिलानेवाले मनोवैज्ञानिक वकील का यह कर्तव्य होता था कि वह उसके आस पास की लगुवा भगुवा पूरक चीजें अपने आप खरीद डालें। एक बार जब रंजिनी ने किसी दूकान से बिनाई करने वाली बारह नम्बर की सलाई खरीदी तो वकील साहब ने मन मिलाने के लिये फोरप्लाई का एक पौंड ऊन लिया और डिजाइनों की एक किताब भी खरीद ली ताकि श्रीमती रंजिनी उस ऊन के द्वारा डिजाइनों की किताब देख देख कर वह अपनी खरीदी हुई सलाइयों से उसकी प्रेक्टिस कर सकें! जब वकील साहब

की खरीदी हुई चीज से रंजिनी प्रसन्न होती तो वे निहाल हो उठते और अपने मनोविज्ञान को धन्यवाद देते !

घूमने का क्रम जारी रहा। रंजिनी को साथ लेकर वे रोज शाम को दशाश्वमेध जाते; कीर्तनभजन सुनवाने से लेकर भरी चांदनी रात में नौका विहार करते; हर तरह से वे अपने व्यक्तित्व के कांने मार रहे थे !

इसी बीच एक दिन गृहस्थ चेतन रंजिनी ने घर में मसाला चुक जाने पर वकील साहब से मसाला लाने को कहा !

'तो क्या सब कुछ चुक गया है ?' टालने की गरज से वकील घोरपड़े ने पूछा।

'नहीं, और कई चीजें तो हैं, लाल मिरचें खत्म हो गई हैं। डेढ़ पाव वही लेते आइए !' रंजिनी ने चतुर गृहणी की तरह कहा।

'डेढ़ पाव लाल मिरचें ?' आश्चर्य से मुंह खोलते हुए घोरपड़े बोले 'तुम जानती नहीं ! कैप्टन चारिया कहते हैं कि अधिक लाल मिरचें खाने से आदमी में स्त्री-सुलभ-पलायन-प्रवृत्ति जागती है ! उससे तो बचने की चेष्टा करना चाहिए ! समझीं ?'

'कुछ नहीं समझी; जाइए चुपचाप मिरच लेकर आइए। खाना मैं बनाती हूँ डाक्टर चारिया नहीं ! यह सब अपना मनोविज्ञान कागज के लिये रखिये, चूल्हे के लिये नहीं !'

यह टोन सुनकर वकील साहब का मनोविज्ञान हुर्र हो गया। चुपचाप उठे। कलेजे पर पत्थर रक्खा और चौके में डेढ़ पाव लाल मिरचें ला रक्खीं ! मन की विरोधी प्रवृत्तियों को वह सचमुच दबा देना चाहते थे !

विराट व्यक्तित्व के निर्माण का कार्यक्रम बराबर चलता रहा।

Tri Bhuwan Singh को

बाहर से लौट कर आते तो घर में भी वे अपने उत्तरदायित्व को निभाते रहते। घोरपड़े जी रंजिनी को समझा चुके थे कि दुनियाँ में मन ही एक ऐसी चीज होती है जो प्रायः सब कुछ मिल जाने के बावजूद भी नहीं मिल पाता है। इसलिये उन्हें अपने हर काम से सिर्फ मन मिलाने पर ही जोर देना चाहिए !

मन मिलाने के इस कार्यक्रम को दोनों ने इतवार के दिन शुरू किया।

गुलाबी जाड़े के दिन थे। धूप बुरी नहीं लगती थी। हल्की धूप छाँह वाली जगह चुन कर दो कुर्सियाँ रक्खीं गईं। सामने की एक तिपाई पर घोरपड़े जी ने कई किताबें ला रक्खीं। रंजिनी दूसरी कुर्सी पर सामने आकर बैठ गई।

घोरपड़े ने कहा—

'जानती हो रंजिनी, हमारे मन के भीतर भी एक मन होता है। वही मन हमारा मालिक होता है। जो कुछ वह चाहता है वही हम करते हैं। बहुत सा ऐसा काम होता है जो हमारा ऊपरीमन नहीं चाहता लेकिन मन का मन चाहता है तो बस वह काम हम कर बैठते हैं !'

रंजिनी ने घोरपड़े के हाथों में खुली हुई किताब छीन कर बंद कर दी। फिर बोली—

'यह सब क्या है ? भला मन का मन होता है कहीं ? यह सब तो 'माइंड' करता है !'

घोरपड़े बोले—

'माइंड ? . . . नहीं 'माइंड' तो अलग चीज है। हमारे अंदर जो संवेग हैं, जो प्रेरणाएँ हैं, वह सब अलग चीजें हैं ! हमारे अंदर बहुत सी बातें सिर्फ आत्मा की पुकार पर ही उठती हैं ! जड़ और

चेतन में यही तो है। चेतन की आत्मा होती है जड़ की नहीं। यह सब जो रोज रोज दुनियाँ के लोग बदमाशी करते हैं और कचहरी दौड़ दौड़ कर जाते हैं, यह सब उनकी जड़ता है! वे लोग अपने मन की बातों को ध्यान देकर नहीं सुनते! मन की बात सुनें तो आदमी जरूर सुधर जाय?'

रंजिनी जो अब तक कुछ न समझती हुई गुटुर गुटुर सारी बातें सुन रही थी वह सहसा हँसकर बोल उठी:

'हाँ यह तो ठीक कहते हो। जब मैं दिल्ली वाले अस्पताल में थी तो एक ऐसे रोगी से पाला पड़ा कि बस क्या कहूँ? मैं उसकी नर्स थी! शायद वह सब तरफ से बड़ा निराश था। जिन्दा ही नहीं रहना चाहता था! मैंने उसको बड़ी हिम्मत बँधाई। तब उसकी यह फरमाइश हुई कि वह इसी शर्त पर अच्छा हो सकता है कि अच्छा होने के बाद वह मुझी से विवाह करेगा! नर्स का कर्तव्य है कि रोगी का मन चंगा रक्खे इसलिए मैंने वादा कर दिया। जब वह अच्छा होने लगा तब उसका दिमाग खुद धीरे धीरे इतना सुधर गया कि उसने मुझसे फिर उस ढंग की कभी बात भी नहीं की।

घोरपड़े हँस पड़े—

'अच्छा फर्ज करो वह पीछे ही पड़ जाता तब तुम क्या करतीं?'

'अरे ऐसे भी एकाध थे। यहीं बनारस में एकाध ऐसे रोगियों से भी भेंट हुई। उनको भी मैंने अच्छा होने के लिये बहुत धीरज बँधाया था। तुम जानते होगे फ्लोरेंस नाइटेंगिल ने तो अपनी जिंदगी ही रोगियों के लिये समर्पित कर दी थी। मैं तो उसी को अपना गुरु मानती आई हूँ। इसीलिये रोगियों से हँस बोल कर बातें करना नर्स की ड्यूटी है! मगर वे तो सचमुच पीछे पड़ गये। बड़ी मुश्किल

से डाक्टर चारिया ने उन्हें समझा बुझा कर वापस किया ! तब से गई, मेरे वादे मैंने करना बंद कर दिया ।'

'रंजिनी के उत्तर के बाद घोरपड़े ने फिर पूछा—

'अच्छा तो क्या तुम्हें नर्सिंग पूरी तरह से आती है ? पट्टी भी बाँध पाती हो कि नहीं ?'

रंजिनी 'ठहरो, अभी बताती हूँ।' कहती हुई उठ कर गई और अपनी 'नर्सिंग-पेटिका' ले आई। उसमें से पट्टी बाँधने वाले 'स्कार्फ' निकाले। फिर उन्होंने घोरपडे जी के हाथ, पाँव, मुह, सिर, आदि सभी अंगों पर पट्टियाँ बाँध बाँध कर दिखाईं और बताया कि अलग अलग ढंग की पट्टियाँ क्यों बाँधी जाती हैं। किस तरह की पट्टी हर नर्स को बाँधना चाहिए जिसमें रोगी को हरकत करने की पूरी छूट रहे !

घोरपड़े जी मंत्रमुग्ध सुनते रहे और पट्टियाँ बंधवाते रहे।

रंजिनी उन्हें आगे बताती गई कि अस्पतालों में सब नर्स टालू काम करती हैं। ठीक से टेम्परेचर लेना उन्हें नहीं आता। हरेक थर्मामीटर एक से नहीं होते। जाली थर्मामीटर और असली थर्मामीटर की क्या पहिचान होती है ! डाक्टरों की और नर्सों की क्यों नहीं बनती !' टेम्परेचर-चार्ट' रखने का वास्तविक लाभ क्या होता है ! रोगी के लिये दवा ज्यादा जरूरी है या उसकी नर्सिंग ज्यादा लाभदायक हो सकती है, आदि सारी बातें रंजिनी ने उनको क्रमशः बतायीं।

अपनी पत्नी का यह सारा कौशल सुन कर घोरपड़े जी आत्म विभोर हो गये। उन्हें अपनी बीमारी और रंजिनी की सेवा याद आ गई। एकाएक भावावेश में उठे और उठकर उन्होंने उसे अपनी बाहों में भर लिया। थोड़ी देर तक वे बातें न करके सिर्फ प्रेम करते रहे।

मुहब्बत मनोविज्ञान और मूंछ दाढ़ी

प्रेम का यह इंटरवल उन्होंने अपने कमरे में आकर बिताया। कुछ देर बाद वे फिर अपनी मन मिलाने की प्रक्रिया दोहराने लगे। घोरपड़े को सिनेमा की रंग-बिरंगी पत्रपत्रिकाएँ पढ़ने का जितना शौक था, उतना सिनेमा देखने का नहीं। बहुत सी सिनेमा वाली पत्रिकाएँ वे खरीद कर लाया करते थे। लेट कर दोनों ने सिनेमा की पत्रिकाओं के पन्ने पलटने शुरू किये। थोड़ी देर बाद ही वे रिमार्क करने लगे—

'आजकल हिन्दुस्तानी फिल्मों में बड़ा 'चीप रोमांस' दिखाया जाता है!'

'हाँ ऽऽ। लेकिन दुनियाँ में आज कल यही तो हो रहा है। वही बेचारे क्या करें? उन्हें तो दुनियाँ की ही बात दिखानी पड़ती है। आखिर कोई बाहर से गढ़ कर तो लाते नहीं!'

'इधर सुरैया देवानंद की बहुत दिनों से कोई फिल्म नहीं देखी!'

'अब सुरैया क्या, अब तो नरगिस राजकपूर का जमाना है... यह देखो...यह 'कलर काम्बीनेशन' देखो! क्या ग्रैण्ड है!! क्या बतायें बनारस ऐसा शहर है कि जहाँ 'कास्टली' साड़ी तो मिल जाती है लेकिन 'डीसेन्ट' चीजें नहीं मिलतीं। यह नई चीज है। पता नहीं यहाँ मिलेगी भी या नहीं!'

'छोड़ो भी, साँवले रंग पर बैंगनी कलर...? अच्छी चलाई!!'

'जाने भी दो ऐसा ही साँवला साँवला करना था तो ब्याह किस लिये किया था?'

'अरे तुम बुरा मान गईं?'

घोरपड़े ने फिर उसे निकट खींच लिया। धीरे धीरे दोपहरी की खुमारी भरी नींद उनकी पलकों पर छा गई। दिन कुछ और

ढला। शाम के आसार दिखाई पड़ने लगे। पहिले रंजिनी की नींद टूटी । उठ कर देखा नौकर चाय का पानी चढ़ाने के लिये चूल्हा सुलगा रहा था। रंजिनी अपने कमरे में चली गईं।

वायोलिन-केस की धूल झाड़ कर उसमें से वायोलिन निकाला। 'बो' साफ की। फिर धीरे धीरे उसकी खूँटियाँ कसीं। स्वर मिलाये और 'बो' चलने लगी। वायोलिन बजने लगा। उसके साथ वे गुन-गुनाने लगीं। घोरपड़े भी अपने कमरे में पड़े पड़े जाग चुके थे। वायोलिन की आवाज के साथ की गुनगुनाहट उनके कानों में भी पड़ी। ध्यान लगा कर उन्होंने सुना तो सुनाई पड़ा—

आओ बनाएँ घरवा प्यारा!

घोरपड़े ने तकिए का सहारा लेकर कुछ सजग हो गीत सुनने के लिये कान खड़े किये।

आगे आवाज आई—

हम और तुम और मुन्ना प्यारा
घरवा होगा स्वर्ग हमारा !!

बस फिर वकील साहब से नहीं रहा गया। तत्काल अपने कमरे से बिस्तर छोड़ रंजिनी के कमरे में पहुँचे। बगल में बैठ कर आहिस्ता से पूछा—

'ये... ये... ये तुम क्या गा रही हो? मुन्ना प्यारा...? छिः छि... यह तुमको किसने सिखाया?'

सुब्बारंजिनी शरमा कर चुप हो गईं। सिर्फ एक शब्द मुंह से निकला—

'क्यों?'

'क्यों क्या? 'मुन्ना प्यारा' आजकल 'घरवा' को 'स्वर्ग' नहीं

बनाता। वह तो हमारी 'फ्रीडम' को काट देगा! 'फाइनेंशियल क्राइ-सिस' ले आएगा! समस्याएँ खड़ी हो जायेंगी!'

श्रीमती रंजिनी बोलीं—

'छोड़ो भी! तुम्हें तो हर समय यही सूझता है! इसे छोड़ दूँ तो गाना ही टूट जायगा! गाना टूट जायगा तो गाऊँ क्या?'

इस बात पर तो वकील साहब ने सोचा भी नहीं था! रंजिनी का गाना टूट जाय, इसके लिये तो वे किसी भी मूल्य पर तैयार नहीं थे। एक क्षण भौं सिकोड़ते ही उनकी मनोवैज्ञानिक बुद्धि ने उसका हल निकाल लिया। प्रसन्न होकर बोले—

'क्या लाइन है? पढ़ना तो जरा...हम और तुम और मुन्ना प्यारा?' है ना? अब इस 'मुन्ना प्यारा' की जगह फिलहाल 'नौकर प्यारा' कर दो, काम बन जायगा। है ना? गाओ गाओ...अच्छा सुनें तो जरा?

रंजिनी ने गाया—

'हम और तुम और फिलहाल नौकर प्यारा...'

घोरपड़े बोल पड़े—

'अरे नहीं नहीं! इसमें फिलहाल लगाने का क्या काम है? 'फिलहाल' तो सिर्फ समझ लो! गाओ नहीं!! गाओ इतना—'हम और तुम और नौकर प्यारा, घरवा होगा स्वर्ग हमारा!'

रंजिनी गाने लगीं। देखते देखते उस संगीत का ऐसा प्रभाव हुआ कि स्वयं वकील साहब भी झूम झूम कर वही गाना गाने लगे। जरा सी देर में उनके घर में 'कोरस' के रूप में ये लाइनें गूँजने लगीं—

हम और तुम और नौकर प्यारा
घरवा होगा स्वर्ग हमारा!!

तीन

१

सात महीने हँसते खेलते बीत गये । इतने दिनों के बीच वकील साहब और श्रीमती सुब्बारंजिनी घोरपड़े ने एक ही बात साथ-साथ महसूस की। उन्हें लगा कि वे साथ-साथ सब जगह घूमते फिरते जरूर हैं लेकिन उसमें उन्हें पहिले जैसा मजा अब नहीं मिलता।

अब भी वे अपने मिलने वालों से हँस हँसकर बातें करते लेकिन वकील साहब को अब यह सब उबाने वाला शिष्टाचार मात्र लगता। कहीं किसी बात में वह रंग नहीं मिला जिसकी वह कल्पना कर रहे थे। रंजिनी अब भी बाजार जातीं, लेकिन घोरपड़े जी को अब दुकान पर जाकर इस तरह खड़े रहना और फिर ऊन और सलाइयाँ खरीदना बहुत रोचक नहीं लगता था। बैठकर बेकार गप लड़ाने में भी उनका जी नहीं लगता? घर में खाली बैठने पर वही घर उन्हें काट खाने के लिए दौड़ने लगता! अब वे अपनी मनोविज्ञान की किताबें भी उलटते पलटते तो उन्हें चैन नहीं मिलता।

सुब्बारंजिनी का भी कमोबेश यही हाल हो गया था। जिन बातों में उन्हें पहिले कुछ दिन बड़ा मजा आया था, वही मनोविज्ञान की बातें—मन का मन, मन के मन का मन, उपचेतन, अवचेतन, आदि—अब बड़ी वाहियात लगती थी। इधर जब वह वायोलिन बजाती तो न तो वकील साहब अपनी किताबें छोड़कर दौड़ आते और न उसके साथ स्वर में स्वर मिलाकर गाते ही। घोरपड़े

अब रंजिनी की पट्टियों और असली थर्मामीटरों के चक्कर में भी ज्यादा नहीं उलझते थे। बहुत दिनों से 'फर्स्ट एड' की किताबें और नर्सिंग पेटिका बंद पड़ी हुई थी।

मनोवैज्ञानिक होने के नाते घोरपड़े जी सोच रहे थे कि उनके प्रेम को इस तरह भरी जवानी में लकवा क्यों मार गया? तभी उन्हें अपनी आत्मा की चीत्कार की याद आई। उसने कहा था—'रे मूढ़! तूने असंभव को संभव कर दिखाया है! तूने ईश्वर के नियमों को तोड़ डाला है, यह अच्छा नहीं हुआ।' आत्मा में वे विश्वास तो वे पहिले भी करते थे, लेकिन इधर इस तरह आत्मा की आवाज जो प्रतिफलित हुई थी, उससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। अचेतन मन पर आत्मा की चीत्कार का प्रभाव उस आचरणवादी मनोवैज्ञानिक को साफ दिखाई पड़ रहा था।

दोनों व्यक्तित्वों को जिस तरह तन मन और धन से एक कर देने के बाद वह एक विराटता की कल्पना कर रहे थे, वह इस तरह हाथ नहीं आएगा, इसका विश्वास मनोवैज्ञानिक घोरपड़े को हो रहा था।

इस विश्वास के बावजूद भी घोरपड़े सुब्बारंजिनी के साथ अपना कार्यक्रम चलाते रहे। वे चाहते थे कि वे अपने को एक दूसरे का पूरक बना दें मगर वे पूरक बनने के बजाय आपस में टकरा जाया करते थे। घोरपड़े ने उस स्थिति का विश्लेषण करना शुरू किया। वकील साहब ने देखा कि जो पुलकन और रोमांच छिप छिपकर मिलने में मिलता था, वह आनंद अब इस तरह खुले आम घूमने में नहीं आता। उन्हें याद पड़ता कि जो मजा अपनी प्रेयसी के साथ अँधेरे सिनेमाहाल में बैठने में है, वह अपनी पत्नी के साथ चमकते प्रकाश

में उसी जगह बैठकर कभी नहीं मिल पाता। शाम को शीशे के सामने सीटी बजाते हुए खड़े होकर बाल काढ़ते समय अपनी 'हनीड्यू' से मिलने की जो सिहरन मन में रहती है वह प्रेयसी को पत्नी रूप में परिवर्तित हो जाने पर साथ-साथ एक ही ताँगे में बैठकर आने जाने में नहीं है। जब लोग यह जान जाते हैं कि अमुक आदमी को अमुक के साथ घूमने फिरने का अधिकार है तो फिर किसी को उनमें जिज्ञासा नहीं रहती। चार परिचितों को काटते हुए, उनकी आँख बचा कर निकलते हुए––या पकड़े जाने पर बीमार चाचा को देखने जाने का बहाना बता कर––उड़ कर अपनी 'डार्लिंग' का अँधेरी सड़क पर हाथ पकड़ कर घूमने में जो लुत्फ मिलता है, वह रोज बीस आदमियों के सामने हाथ जोड़ कर अपनी उसी पत्नी का बार बार परिचय देने में कभी नहीं मिलता।

सुब्बारंजिनी भी इतनी जल्दी प्रेम की क्षणभंगुरता सिद्ध होते देख बड़ी चिंतित थीं। वह समझती थीं कि उनके हाथ से कोई चीज आहिस्ता आहिस्ता खिसक रही है मगर वे उसे खिसकने से रोक नहीं पा रही थीं। खुद अपनी उदासी का कारण भी उन्हें समझ में नहीं आता था।

घोरपड़े जी चूँकि सोचते ज्यादा थे इसलिए उनकी मनोदशा ज्यादा बिगड़ रही थी। अक्सर उनके दिमाग में यह ख्याल चक्कर काटता कि उन्हें अपनी प्रेयसी से विवाह नहीं करना चाहिए! आखिर जब भगवान् ने प्रेयसी और पत्नी नाम की दो चीजें बनाई हैं तो मैंने उन दोनों चीजों को मिला कर जो एक कर डाला है, उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा!

कई दिन बाद उस रोज गजानन चौधरी फिर वकील साहब के

यहाँ आए। उनके मकान मालिक नें उनको मकान खाली करने की नोटिस दे दी थी। गजानन चौधरी इससे बहुत परेशान थे। घोरपड़े के यहाँ से जब से वे बुरा मान कर गए थे तब से वे नहीं आए थे। मगर इस मुए मकान मालिक ने आखिरकार नोटिस देकर उन्हें अपने वकील दोस्त की शरण जाने पर मजबूर कर दिया। घोरपड़े ने उनकी मुसीबत सुनी। उन्हें सलाह दी और बताया कि किस तरह मकान मालिक उनका न तो कुछ बिगाड़ सकता है और न उन्हें घर से ही बाहर ही निकाल सकता है!

गजानन चौधरी यह सुनकर बहुत पुलकित हुए। फौरन घोरपड़े से पूछने लगे—

'और कहो यार! क्या हाल चाल हैं? इधर आ ही नहीं पाया! कैसी कट रही है भाभी जी के साथ?'

घोरपड़े जी के मन का घाव छू गया। अब तक अपनी दिमागी उलझन उन्होंने किसी से नहीं कही थी। आज गजानन चौधरी को इस तरह पूछते देख वे फूट पड़े—

'यार क्या बताऊँ! कुछ समझ में नहीं आता! ऐसा लगता है कि जैसे मैंने सिर्फ कावर देखकर किताब खरीद ली!'

कहते कहते उन्होंने गहरी साँस भरी।

गजानन चौधरी भी बहुत द्रवित हुए। बोले—

'अब जब किताब खरीद ली है तो मित्र! आँख बंद करके पढ़ जाओ! चार आदमियों से कहते रहोगे तो यह तो दुनियाँ है! उल्टा तुम्हीं को बुद्धू बनाएगी! भला कौन तुम्हारा कहना मानेगा? तुम तो भई, समझदार आदमी हो, कोई ऐसी तरकीब लड़ाओ कि जिससे कि निभ जाय! ऐसा भी क्या! पुराने वक्त के लोग तो जिस लड़की

का हाथ पकड़ लेते थे, उसकी जिन्दगी निभा देते थे। फिर तुम तो पढ़े लिखे आदमी हो! बहुत सी बातें तो तुम मनोविज्ञान से ही हल कर सकते हो!'

गजानन चौधरी उनको यह समझा बुझा कर और अपने मकान मालिक से लड़ने के लिये कमर कसते हुए चल दिये। घोरपड़े जी बातें समझ लेते थे। दोस्त की सलाह भी समझ ली!

वक्त पाकर एक दिन उन्होंने सुब्बारंजिनी से अपने वैवाहिक जीवन के रोमांटिक टाइम टेबुल के प्रति ऊब की भावना व्यक्त की। उसके मन में भी यह काँटे की तरह खटक रहा था। रंजिनी ने भी उनकी बातों की पुष्टि की।

अंततोगत्वा उन दोनों ने अपने वैवाहिक जीवन में रोमांस तत्व के क्रमिक ह्रास पर विचार विनिमय करने के लिए आपस में एक गोष्ठी करना तै किया।

चार

पहरेदारों की लम्बी लम्बी तेज सीटियों से रात का सन्नाटा बार बार टूट जाता था। एक सीटी और दूसरी सीटी के बीच का सन्नाटा और भी डरावना हो उठता था। लगता था कि आस पास कहीं कोई खतरा जरूर है ! जो भी इन्हें रात में एक बार सुन लेता था, वह सहम उठता था—सिवाय उनके जिनसे बचने के लिये, ये सीटियाँ बजाई जाती थीं ! उन्हें तो यह पूरा विश्वास रहता ही है कि हिस्सा पूरा मिल जाने पर सीटियाँ वहाँ हरगिज नहीं सुनाई पड़ेंगी जहाँ वे जम कर अपना काम कर रहे होंगे।

एडवोकेट दामोदर विष्णु घोरपड़े के ऊपर वाले कमरे में हल्की नीली रोशनी जल रही थी जो कि रोशनदान से छन छन कर सड़क के एक किनारे तिरछी होकर पड़ रही थी। कमरे का सिर्फ एक दरवाजा खुला हुआ था जिसमें से होकर आती हुई हवा, कमरे के हल्के नीले रंग के पर्दों को धीरे-धीरे हिला देती थी। एक किनारे पर रक्खी हुई धूपदानी से उठती हुई सुगंध ने कमरे को गमका रक्खा था। कमरे के बीचो बीच एक मेज थी। मेज के किनारे बेंत के छोटे-छोटे चार मोढ़े थे। दो मोढ़ों पर आमने सामने दो व्यक्ति बै हुए थे। एक थे वकील साहब और दूसरी थीं श्रीमती सुब्बारंजिनी। कॉफी की भरी हुई केटली रक्खी थी। सामने प्यालों में भी वह भरी हुई थी। जले हुए सिगरेट के टुकड़ों से वकील साहब के सामने रक्खा हुआ 'ऐश ट्रे'

एकदम भर गया था। दोनों के चेहरों पर एक अजीब सी चिंता व्याप्त थी। शायद कोई अखबार का आदमी उन्हें देख पाता तो यही समझता कि वे यही सोच रहे होंगे कि युद्ध में 'एटम बम' छोड़ा जाय या न छोड़ा जाय! बात भी कुछ कुछ ऐसी ही थी। स्पष्ट ही वे अपने ह्रासोन्मुख रोमांस पर चिंता प्रकट कर रहे थे।

'खैर कुछ भी कहो। मन माफिक करने के लिये मैंने अपने पर कितना जब्र किया है, यह आसानी से किसी दूसरे को समझाना मेरे लिये कठिन है। अपने मन को उस ढंग से रख कर देखिए तो पता चलेगा कि कौन क्या करता है? ... क्या कहूँ मेरी आत्मा की बात...

'तुम फिर वही आत्मा परमात्मा की बातें लेकर बैठ गए। मैं कहती हूँ कि क्या हम लोगों की अपनी अक्ल कहीं गुम हो गई है जो आप आत्मा परमात्मा का सहारा ढूंढ ढूंढ कर लाते हैं! मैं अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह समझती हूँ। लेकिन मैं कर भी क्या सकती हूँ? कहो तो गिरिस्थी चलाऊँ और कहो तो दिन भर बैठ कर प्रेम करूँ? दोनों बातें संग संग आज तक मैंने तो नहीं सुना।'

'वाह अभी हमारे बार-एसोसियेशन के एक दोस्त रमेश मुकर्जी की 'लव-मैरिज' हुई है। दोनों बड़ी शान से रहते हैं। मिसेज मुकर्जी घर भी सम्हालती हैं और रोमांस भी करती हैं! यह तो नहीं होता कि घर के इस्तेमाल के लिये मुकर्जी ने कोई दूसरी रख छोड़ी हो और बाहर उनको लेकर घूमते हों!' नई सिगरेट जलाते हुए घोरपड़े बोले।

उठते हुए धुयें को अपनी आँखों में लगने से बचाने के लिये श्रीमती ने अपने हाथों से उसे दूसरी तरफ मोड़ने की कोशिश करते हुए कहा—

'होगा। दुनियाँ भर की मिसालें ले लेकर अगर हम अपना जीवन लड़ने चलेंगे तो न इधर के रहेंगे न उधर के। हमें तो सारी बातें छोड़ कर यह सोचना है कि हम अपने रोमांस को किस तरह पुनर्जीवित कर सकते हैं! इस तरह की बहस से तो हम उसे श्मशान-घाट की ही तरफ ले जायेंगे?'

सहसा बात काट कर वकील साहब बोल पड़े--

'तो क्या मैं श्मशान घाट का रास्ता बता रहा हूँ?

बात बिगड़ जाने के डर से रंजिनी ने अब शान्ति पूर्ण सह-अस्तित्व का सहारा लिया---

'नहीं। मेरा यह मतलब नहीं था। किन्तु मैं यह कह रही थी कि हम लोग जिस तरह की बातें कर रहे हैं उससे बात बढ़ने के अलावा और कोई नतीजा नहीं है। इसी से कहती हूँ कि अब कुछ ऐसा सोचिये जिससे बात बन जाये, बिगड़े नहीं। आप तो मनोविज्ञान के पंडित हैं। आप चाहें तो जरूर कोई ऐसा रास्ता निकाल सकते हैं जिससे यह संकट दूर हो जाये। आखिर हम लोगों के व्यवहार में तो कोई भेद नहीं आया है, सिर्फ मन का ही फर्क है जिसे आप चाहें तो क्षणभर में किसी तरकीब से दुरुस्त कर सकते हैं।'

आज पहली बार वकील साहब के मनोविज्ञान शास्त्र की प्रशंसा रंजिनी ने की थी। न सिर्फ प्रशंसा ही की थी वरन् उसने उसकी उपयोगिता भी मानी थी। घोरपड़े का अहम् संतुष्ट हो गया। अपनी विजय पर वे मुस्कुरा उठे। फिर सिगरेट का एक कश खींच कर बोले---

'तो इस तरह कहो ना! मैं तो बहुत पहिले से ही कह रहा हूँ रंजन! (वकील साहब पर जब प्यार का दौरा आता था तब वे

सुब्बारंजिनी का यही कहते थे) बिना मनोविज्ञान के हमारी समस्याएं नहीं हल हो सकतीं। तुमने अब उसका सहारा लिया है तो वह हमारी नैया भंवर के पार लगा देगा।'

घोरपड़े जी मौन हो गये। उसके बाद सिगरेट के धुएं के गोल गोल छल्ले उड़ाते हुए वे कुछ सोचने लगे। तारों भरी काली रात में जिस तरह कभी कभी हवाई जहाज की रोशनी उड़ती सी दिखाई देती है और लुप्त हो जाती है, उसी तरह मे घोरपड़े की आँखों के सामने आशा की किरन दिखाई पड़ कर लुप्त हो जाती थी। लेकिन जिस तरह हवाई जहाज की घर्र घर्र आवाज दिखाई न पड़ने पर भी आसमान में उसका अस्तित्व साबित करती रहती है, उसी तरह आशा की यह लुका छिपी उनके दिमाग में भनभना रही थी। उन्हें विश्वास था कि वे शीघ्र ही उसे पकड़ लेंगे। कुछ आवाज में भी पड़ज का पुट देते हुए बोले—

'जिस तरह हमने प्रेयसी प्रियतम को एक ही चुटकी में पति पत्नी बनाकर समाज के अक्षय सिद्धान्त को नष्ट किया है, उसी तरह हमें इस दिशा में भी सशक्त कदम उठाना पड़ेगा। सुनो रंजन! हमें यह भूल जाना पड़ेगा कि हम और तुम पति पत्नी हैं।'

सुब्बारंजिनी इस तरह चौक पड़ीं जैसे उसे जलती हुई सिगरेट छू गई हो। बोलीं—

'भला यह कैसे हो सकता है कि हम यह रिश्ता भूल जायें? भूलना इतना आसान है क्या?'

'हाँ। भूलने की क्रिया को भी इसी तरह आसान बनाना होगा। यदि हम किसी भी चीज को प्रयत्न करके याद कर सकते हैं तो उसे प्रयत्न करके भूल भी सकते हैं। गीतों की बात जाने दो जिनमें

'याद भुलाई जा न सकेगी' गाया जाता है, लेकिन याद भुलाई जा सकती है। जिस तरह से हमने एक दूसरे को प्यार करने के पहले अपने दिमाग को प्यार ग्रहण करने के लिये तैयार किया था उसी तरह एक बार उसी मानसिक-अनुशासन को अपने ऊपर फिर लगाना होगा। उसी से हम अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर सकेंगे। हमें फिर वही सब क्रियायें दुहरानी पड़ेंगी ताकि हमारा रोमांस जीवित रह सके। इसके लिये तुम्हें फिर से 'मिस' सुब्बारंजिनी बनना होगा और मुझे मात्र दामोदर घोरपड़े।'

श्रीमती रंजिनी मनोविज्ञानी वकील की इस अद्‌भुत दिमागी कलाबाजी को आश्चर्य चकित होकर देख सुन रही थी। उसे अपने कानों पर यकीन नहीं आ रहा था। सहसा उसके मुंह से निकल पड़ा—

'आखिर इस सब नाटक का लाभ क्या होगा?'

'लाभ वही होगा जिसके लिये आज हमने अपने चार घण्टे बरबाद किए हैं। हमें अपने रोमांस को जीवनदान करना होगा। यही इसका लाभ होगा? तुम तो जानती हो, जिस तरह किसी रोग को दूर करने के लिए उसी रोग के कीटाणुओं का इंजेक्शन लगाया जाता है, उसी तरह अपने रोमांस को गरमाने के लिए हमें भी रोमांस के ही इंजेक्शन लगाने पड़ेंगे! रंजन! इससे न सिर्फ हमारा जीवन ही सुखमय होगा वरन् हम संसार के कितने ही दुखी दम्पतियों को यह रास्ता दिखा सकेंगे कि वे फिर किस तरह अपना जीवन सुखी बना सकते हैं!'

नई सिगरेट जलाकर वकील साहब कमरे में टहलने लगे। रंजिनी को मौन श्रोता पाकर वे उत्साह में आ गए—

'न सिर्फ यह तुम्हारा कल्याण करेगा बल्कि यह तो मनोविज्ञान शास्त्र में दामोदर घोरपड़े की नई देन होगी। मैं यह बता सकूँगा कि एक बार याद की हुई चीज को किस तरह भुला कर सुख का द्वार ढूंढा जा सकता है। संसार की कितनी रोमांटिक ट्रेजेडी' बच जायँगी। वे सब मेरा नाम ले ले कर मुझे धन्यवाद देंगे। रंजिनी! आज तक जिस चीज के लिये मैं परेशान था, वह आखिर कार मेरे हाथ लग ही गई। तजुरबा पूरा करने के बाद जिस वक्त मैं दुनियाँ के सामने इस बात को रक्खूगा तो एकदम तहलका मच जायगा। सारे मनोविज्ञान-अध्येयता चक्कर में पड़ जायँगे जब मैं इसे अपने ही ऊपर प्रमाणित करके दिखा दूंगा! मै इसी मनोविज्ञान का आधार लेकर अपनी वकालत भी चमकाऊँगा!'

रंजिनी के मुख पर अब भी अविश्वास की छाया थी। घोरपड़े ने इसे तत्काल देख लिया। अबकी रंजिनी को उन्होंने अधिक वैयक्तिक स्तर पर समझाया—

'तुम चिंता न करो रंजन! समय पाकर सब ठीक हो जायगा। घबराने की कोई बात नहीं। तुम्हें मात्र अपना दृष्टिकोण बदलना है और कुछ नहीं। दृष्टिकोण के बदलते हो सब ठीक हो जायगा। तुम पाओगी कि तुम प्यार करने के लिये और मुझसे मिलने के लिये फिर उसी तरह से परेशान हो, जैसे पहिले रहा करती थीं। सिर्फ नजर बदल डालो। अपने पति घोरपड़े को भूल जाओ। सिर्फ दामोदर को याद रक्खो—वही दामोदर, जो तुमसे सिनेमाघर के अँधेरे में मिला करता था, वही दामोदर जो अस्पताल में तुम्हारी सेवा से चंगा हुआ था! तुम्हें अपने दिमाग को यह रास्ता दिखाने के लिये कुछ कठिनाइयाँ जरूर पड़ेंगी। उसके लिये सबसे सरल तरकीब यह

है कि तुम कुछ सस्ती किस्म की पत्रिकाएँ और किताबें पढ़ डालो। कुछ ऐसे उपन्यास और कविता की किताबें आसानी से मिल जायँगी जिनको पढ़ कर तुम्हारा मन उसी तरह रहने और काम करने के लिये मजबूर हो जायगा। माँग जाँच कर या खरीद कर मैं तुम्हें ऐसी सारी किताबें ला दूंगा। फिक्र न करो। उसका असर अपने आप होगा। बस तुम्हें उसी लगन के साथ पढ़ना पड़ेगा जिस तरह लड़कियाँ स्कूल में अपनी किताबों के नीचे उन्हें रख कर मगन हो, रस ले लेकर पढ़ती हैं। कुछ दिनों इस तरह करने पर तुम देखोगी कि तुम में एक कितना बड़ा परिवर्तन आ गया है।'

सुब्बारंजिनी का दिमाग जैसे जम गया था। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। घोरपड़े के दिमाग का चक्कर देखकर उसे खुद चक्कर आने लगा था।

वकील होने के कारण, दामोदर घोरपड़े को अपनी बात जबर्दस्ती मनवा लेने में कोई खास दिक्कत नहीं महसूस हुई। अक्सर कचहरी में इससे ज्यादा कूढ़-मग्ज लोगों को अपनी बात समझा कर वे अपनी धाक जमा चुके थे! यहाँ तो वे 'प्रेम मात्र' मूल्य पर अपना तर्क दिए जा रहे थे। आखिरकार सुब्बारंजिनी को यह विश्वास कर लेना पड़ा कि वे किसी तरह अपने चारों तरफ का वातावरण भूल कर, फिर उसी भूत काल के गर्भ में डूब जायँ जहाँ से वे किसी तरह बाहर निकलीं थीं। घोरपड़े ने रंजिनी को यह भी विश्वास दिला दिया कि वे इस प्रकार सारी दुखी मानवता का कल्याण करेंगी और फ्लोरेंस नाइटिंगेल की आत्मा उन्हें आशीष देगी! प्रेम विवाह से संतप्त लोगों के निवारणार्थ रंजिनी ने इस तजुरबे में अपना योग देना स्वीकार कर लिया।

घोरपड़े ने इस कार्यक्रम को प्रारंभ करने के लिये वही पुरानी जगह—यानी 'सुभद्रा देवी धर्मार्थ अस्पताल'—का नाम प्रस्तावित किया। उनका कहना था कि वहीं से हमारा प्रेम शुरू हुआ था, इसलिये अब वहीं से दुबारा शुरू करना चाहिए!

मुब्बारंजिनी ने सुझाया—

'आप तो जानते हैं कैप्टन चारिया को अगर यह सब पता चला तो कितना तमाशा बनेगा! वे समझेंगे कि हमारा दिमाग खराब हो गया है और विटामिन 'डी' की गोलियाँ और हरे छिल्कों तरकारी का कार्यक्रम हमारे ऊपर शुरू कर देंगे। मिसेज हरनाम पुराने ख्यालात की हैं। वे कभी भी इसे पसंद नहीं कर सकतीं! उनकी नजरों में आप गिर जायेंगे!'

वकील साहब नजरों में नहीं गिरना चाहते थे। बोले—

'अच्छा न सही अस्पताल! अस्पताल के कम्पाउण्ड में तो उन्हें किसी तरह की आपत्ति नहीं हो सकती! आखिर अस्पताल के कम्पाउण्ड में तो और भी कई लोग रहते हैं। बात यह है कि जब तक पुराना 'एसोसिएशन' नहीं मिलेगा तब तक हमारे 'रोमांस' में 'लाइफ' नहीं आ सकती! रात के होने के बाद अगर हम उस कम्पाउण्ड का इस्तेमाल करें तो.......'

'कैप्टन चारिया नाराज होंगे! वे कहते थे कि इस तरह नर्सों को खुली छूट देने से अस्पताल की आबरू पर बट्टा लगता है!'

'हाँ हाँ...लेकिन रात में कौन क्या जाने? फिर अब तुम उस अस्पताल में नर्स भी नहीं हो! मियाँ बीवी अगर राजी हों तो काजी साहब को क्या पड़ी है कि वे धमा चौकड़ी मचाएँ?'

रंजिनी चुप रह गई। मौन से उसने स्वीकृति दे दी। सोच लिया

कि जब नाटक होना ही है तो फिर पर्दा किस सीन से उठता है, इस बात को लेकर क्या झगड़ा किया जाय!!

धीरे धीरे दोनों ने भूलने की क्रिया का अभ्यास करना शुरू किया। एक घर में रहते हुए भी वे समझते कि वे दोनों किराएदार हैं जो एक ही होटल में रह रहे हैं। रंजिनी को 'प्रेमपथ' पर अग्रसर कराने के लिये सस्ती किस्म की कुछ उद्दीपन सामग्री की आवश्यकता थी। घोरपड़े उसको पहुँचाते रहे। इस मामले में, जैसा कि वकील साहब का ख्याल था, सचमुच हिंदी की अनेक पत्र पत्रिकाओं और उपन्यासों ने घोरपड़े की समुचित सहायता की। जो चीज वे शायद समझा कर बरसों में भी सफल न हो पाते, वे सब अपने आप घटित होने लगीं। सप्ताह के चार दिन चुन चुन कर रद्दी हिन्दुस्तानी फिल्में देखने के लिये तै कर दिये गए। इससे न सिर्फ मनोरंजन होता था बल्कि उससे पाठ्यक्रम में काफी सहायता मिलती थी।

मनोविज्ञान—*शास्त्री घोरपड़े ने सोचा कि मानसिक अनुशासन* के साथ साथ शारीरिक अनुशासन की भी बहुत बड़ी जरूरत है। जिस तजुरबे को लेकर वे अपना नाम कमाने जा रहे थे उसके लिये घोर तपस्या की आवश्यकता थी। और तपस्या के लिये त्याग भी जरूरी था!

रात का दूसरा पहर शुरू होने वाला था। 'सुभद्रा देवी धर्मार्थ अस्पताल' के पिछवाड़े वाले छोटे फाटक के सामने एक रिक्शा रुका। पिछवाड़े का हिस्सा काफी सुनसान पड़ता था। नीबू और नारंगियों के कुछ पेड़ लगे हुए थे जो अब अधसूखे हो रहे थे। थोड़ी दूर पर अस्पताल में काम करने वाले जमादारों और दाइयों के क्वार्टर थे। रिक्शे

में से घोरपड़े और 'मिस' सुब्बारंजिनी उतरे—(हाँ, अब वकील साहब उन्हें दुबारा 'मिस रंजिनी' ही कह कर पुकारने लगे थे!)। रंजिनी उतर कर आगे बढ़ीं। छोटा फाटक खोल कर वे भीतर घुस गईं। कुछ देर आगे बढ़ कर उन्होंने नीबू की एक सूखी सी डाल पकड़ ली। उसके बाद उन्होंने उसी डाल को पकड़े पकड़े गुनगुनाना शुरू किया। 'कुंज कुटीरे' के इस प्रेमालाप में जिस तरह नायक का पीछे से आना निश्चित रहता है ठीक उसी तरह दबे पाँव फिर वकील साहब आए। आकर उन्होंने रंजिनी की आँख अपनी गदेलियों से बंद कर दी।

रंजिनी घबड़ा उठी। 'कौन है?' कह कर उसने हाथ हटाया तो उन्हें देखा। फिर बोली—

'अजी छोड़ो। तुम बड़े वो हो! यह क्या है?' यद्यपि रंजिनी इस पूर्वनिश्चित कार्यक्रम को जानती थी किंतु फिर भी पाठ्यक्रम के हिसाब से उसे यह कहना पड़ता था। घोरपड़े ने उसकी कनपटी पर उड़ कर आ गई बालों की एक लट को जरा सा हटा कर एक गरम गरम चुम्मी जड़ दी! हालाँकि अँधेरे में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था लेकिन वकील साहब चूंकि पहिले ही से यह जानते थे कि चुम्मी की प्रतिक्रिया पाठ्यक्रम के अनुसार क्या होनी चाहिये इसलिए वे जान गये कि रंजिनी का गाल लज्जा से लाल पड़ गया!

रंजिनी ने कहा—

'तुम बड़े खराब हो जी दामोदर! अगर कोई देख लेगा तो क्या कहेगा?

दामोदर ने जवाब दिया—

'देख लेगा तो क्या कहेगा? प्यार कर रहे हैं! आखिर बुरा क्या कर रहे हैं?'

'छोड़ो भी!' सहसा एक जोरों की खखार की आवाज सुनकर दोनों चौंक पड़े। वकील साहब फौरन पीछे की तरफ भागे और फाटक के बाहर निकल गए। रंजिनी ने देखा कि अस्पताल का एक जमादार उधर से आ रहा था। वह रंजिनी को अच्छी तरह पहिचानता था। छूटते ही बोला——

'बिटिया! इस बखत यहाँ कैसे? वकील साहब कहाँ है?'

पुराना जमादार होने के कारण वह रंजिनी को 'बिटिया' ही कहता था। रंजिनी को पसीना आ गया। घबड़ा कर बोली——

'कहीं नहीं! ऐसे ही काम से आई थी!...अब जा रही हूं।'

जमादार बुड्ढा खुर्राट था। ऐसे नही मानने वाला था। कहने लगा——

'नहीं बिटिया! ऐसे में अकेले घूमना फिरना ठीक नहीं है! चलो तुम्हें डागडर साहब के घर कर आऊँ!'

'नहीं नहीं मैं चली जाऊँगी! तुम फिक्र न करो। जाओ सोओ!' कहती हुई रंजिनी किसी तरह अपने लड़खड़ाते हुए कदमों को सम्हाल हुए फाटक की ओर तेजी से बढ़ी और निकल गई।

बुड्ढा जमादार कुछ देर सोचता हुआ खड़ा रहा फिर आगे चला गया!

. .

दामोदर बाहर मिले! रंजिनी को उन्होंने ढाढस दिलाया और बताया कि रोमांस में ऐसे अवसर प्रायः आते ही रहते हैं। अगर न आएँ तो फिर वह कच्चा रोमांस होता है! अस्पताल के पास से ही एक नाला बहता था जिसमें से होकर सारी गंदगी गंगा में जाकर मिलती थी। नाले के इस ओर एकदम उजाड़ था। बस्ती उस पार से शुरू हुई थी। 'कुंज कुटीरे' से निकल कर यह युग्म इस 'यमुना तीरे' पहुँचा!

नाले पर एक छोटा सा लकड़ी के तख्तों का पुल था। पुल के किनारे एक बिजली का खम्भा था जिसमें बार बार बल्ब लगाया जाता था लेकिन हर बार प्रेमी प्रेमिकाओं का दल उसे तोड़ कर पुल पर अँधेरा कर देता था। यह पुल कई जोड़ों के प्यार करने का केन्द्र था, यह दामोदर जानते थे।

रंजिनी को जैसा सिखाया गया था, उसके अनुसार वह आगे बढ़ीं और बिजली के खम्भे का सहारा लेकर खड़ी हो गई। फिर वे गाने लगीं—

तीर खाते जायँगे, आँसू बहाते जायँगे !
जिन्दगी भर अपनी किस्मत आजमाते जायँगे !!

घोरपड़े चुपके से पुल पर चले गए! एक तरफ की रेलिंग पकड़ कर उन्होंने भी वही गाना शुरू कर दिया! अपनी तरफ से भी वही गाना गाकर उसे वे 'दुगाना' कह कर संतोष कर लेते थे! गहरी गहरी उसाँसों और भोंडे स्वर में गाने का कार्यक्रम काफी देर तक चलता रहा। पास के घड़ियाल ने दो बजाये। रंजिनी चौंक उठीं।

'घर नहीं चलना है क्या? बहुत देर हो गई!'

'घर? . . . अच्छा चलो!'

दोनों घर लौट गए।

मानसिक अनुशासन की यह प्रारंभिक शिक्षा तीन सप्ताह में पूरी हो गई। वे अब मियां बीवी का रूप भूलने में काफी देर तक समर्थ रहते थे। इसीलिये दामोदर घोरपड़े अब उसे एक निश्चित कार्यक्रम के ढंग पर चलाना चाहते थे और उसकी निश्चित प्रति-क्रिया देखना चाहते थे! इन सब में सबसे बड़ा बाधक उनका घर

था! घर का वातावरण, उसकी चहार दीवारी, उसका आँगन उसके कमरे सब चिल्ला चिल्ला कर पुकारते थे कि वे एक शरीफ गृहस्थ हैं—वकील साहब पति हैं और श्रीमती रंजिनी एक भारतीय पत्नी हैं!! घर की दीवारें पुरखों की परम्परा की दोहाई देतीं थीं। वे होटलों की तरह प्रेमी प्रेमिकाओं के नवीनतम प्रकरण—नहीं सुना पाती थीं। इसीलिये घोरपड़े घर को अपनी योजना में एक बाधा समझते थे!

उन्होंने अपने कार्यक्रम का स्वरूप अब कुछ बदला था। अब दोनों अपने कार्यक्रमों के बारे में एक दूसरे को कुछ भी नहीं बताते थे। बताते भी थे तो गलत बताते थे! साथ साथ तैयार होकर जब वे चाय की मेज पर बैठते तो बिना निगाहें उठाए हुए एक कहती—

'मैं आज कमलिनी के घर जा रही हूँ। जरा देर से लौटूँगी। उसके बच्चे की 'बर्थ डे' है! काफी लोग रहेंगे। जरा देर से ही लौटूँगी।'

'ठीक है! मुझे भी कुछ मित्रों ने 'पिक्चर' के लिये बुलाया है। नयी नौकरी मिली है, उसी सिलसिले में कुछ दावत वगैरह की है। हो सकता है मुझे भी काफी देर लगे!' दूसरा उत्तर में कहता।

अब उनके पास इस तरह के अनेक 'बर्थ डे', मूँडन, विवाह, डिनर-पार्टी, पिकनिक, ज्वॉयपार्टी और पिक्चर के कार्यक्रम रहते। हर शाम इनमें से एक वे चुन लेते और चाय पीते समय उसकी घोषणा कर देते! कहीं दोनों के कार्यक्रम अकस्मात् मिल न जायँ, इसके लिये वकीलबुद्धि घोरपड़े ने साप्ताहिक ढंग पर कार्यक्रमों की दो सूचियाँ बना डालीं थीं। एक रंजिनी के पास रहती थी और दूसरी खुद उनके पास। सोम, मंगल, बुध, बृहस्पत, शुक्र, शनि और रविवार के हिसाब

मे दोनों अपने अपने कार्यक्रम बताते थे। इस प्रकार किसी संयोग की सभावना नहीं रहती थी। इसमें सिर्फ इतनी सी अक्लमंदी अपेक्षित थी कि रंजिनी जब भी अपना कार्यक्रम बताती तो इस बात का ध्यान रखतीं कि उन्होंने अपनी किस महिला सखी का नाम लिया है। उसी तरह घोरपड़े भी अपने मित्र का नाम याद रखते! नाम न याद रखने पर यह संभव हो सकता था कि यदि मिसेज दास के यहाँ पिछले सप्ताह 'बर्थ डे' थी, तो कहीं भूल से फिर अगले सप्ताह उन्हीं के यहाँ 'बर्थ डे' न हो जाय! (सब कुछ जानते हुए भी---) इस तरह की भद्दी भूलों से ख्वामख्वाह पति पत्नी के बीच में संदेह बढ़ता है!

अँधेरा बढ़ रहा था। घर में बहाना बनाकर दामोदर घोरपड़े एक अनचालू गली के मोड़ पर सीटी बजाते हुए टहल रहे थे। दूर आती हुई तरबूजी रंग की साड़ी की झलक पाकर वे जोर से सीटी बजाने लगे। सीटी से बता दिया कि वे इंतिजार में हैं। उधर साड़ी का आँचल दो बार ठीक करके सामने से आती हुई 'दीपशिखा सम युवति-जन' ने भी बता दिया कि वह वही है जिसका वे इंतिजार कर रहे थे! एक बार दामोदर धोखा खा चुके थे। अँधेरे में किसी दूसरी लड़की का उन्होंने हाथ पकड़ लिया था! इसीलिये तब से वे बराबर चाहते थे कि अपने गुप्त संकेतों से इसे पहिले से ही जान लिया जाय कि वे वही हैं!

गली के मोड़ पर मिल कर दोनों गली के भीतर चले गए! अँधेरी गली में चलने में उन्हें कठिनाई नहीं हुई। रास्ता दिन का देखा भाला था। मिलते ही दामोदर ने उस लड़की का हाथ दबाया और फिर दोनों ही गरम गरम लम्बी साँसें छोड़ते रहे जैसे कि भारी मुसीबत

के मारे हों! एक दूसरे की गदेलियों में उँगलियों से गुदगुदाते हुए धीमें स्वरों में उन्होंने प्रेमालाप शुरू किया—

'तुम बड़ी वैसी हो! इतनी निठुर न बनो—तो क्या हो जाय? इतनी देर से तुम्हारी इंतिजार में मेरी मुसीबत हो गई! जाने कितनी बार आँखें छलछला आई! एक एक घड़ी बरसों की तरह लग रही थी! तुम अब अगर दो मिनट और न आतीं तो मैं एकदम पागल हो जाता रंजिनी!'

रंजिनी साड़ी का आँचल ठीक करती हुई मुस्करा उठी—(ऐसे अवसरों पर हमेशा उसका मुस्कराना ही नियत रहता!)। बड़ी अदा से फिर रूमाल निकाला और माथे पर आए हुए पसीने की बूँदों को हल्की थपकी देकर सुखाने की चेष्टा करती हुई बोलीं—

'सच? इतना प्यार क्यों करते हो मुझको! किसी दिन अलग हो जायँगे तो जीना मुश्किल हो जायगा!' समाज के प्रेम संबंधी अवश्यंभावी परिणाम की याद करके 'मिस' रंजिनी एक गहरी साँस छोड़ बैठीं!

घोरपड़े एकदम उत्साह में भर गए। कुछ कहने से पहिले उन्होंने रंजिनी का हाथ पकड़ लिया। उसे सीने से लगा लिया और फिर बोले—

'ऐसा न कहो! ऐसा न कहो! मैं मर जाऊँगा! मैं मर जाऊँगा!! मैं कहीं का नहीं रहूँगा! मेरा चमन उजड़ जायगा!!' इस 'डायलाग' को कहने के लिये घोरपड़े ने 'चमन' शब्द को खास तौर से रटा था।

अँधेरी गली में आगे बढ़ते हुए घोरपड़े बोले—

'हमरा प्रेम इसी तरह की अंधी गलियों में भटकता रहेगा!

हम उसका छोर कभी न देख पायेंगे। पता नहीं किस दिन यह पता चलेगा कि अंधी गली के उस पार भी कोई रास्ता है! उफ!!'

इतना कह कर उन्होंने रंजिनी की ओर देखा। रंजिनी ने भी स्वर में स्वर मिला कर 'उफ' कहा। उसके बाद वे गली के अँधियारे में कुछ देर के लिये जैसे खो गये। जब वे चेतन हुए तो उन्होंने देखा कि वे उस अँधेरी गली को पार करके एक सड़क पर आ गए थे। सड़क पर दामोदर के कुछ परिचित दिखाई पड़े। उनसे दोनों ही कतरा कर निकल गये। अब दोनों को अपने परिचितों को काट कर निकल जाने में अद्भुत मजा मिलता था। किसी पहिचाने हुए चेहरे से कतरा कर निकल जाने में वे उस सफलता को पाते कि जैसे वे एक वैतरणी पार कर गए हों।

मरियल सा कटा पिटा चाँद अब आसमान में आ गया था। उसकी रोशनी भी कुछ वैसी ही मुरझाई मुरझाई सी लग रही थी। रंजिनी और घोरपड़े चलते चलते गंगा के किनारे आ पहुँचे थे। दामोदर ने ऊँघते हुए एक मल्लाह को जगाया। नाव लेकर तीनों गंगा पर फैली हुई मटमैली चाँदनी में बिचरने लगे।

रंजिनी चुप थी। वह चाँद के कटे हुए अंश को देख रही थी। नाव धीरे-धीरे चल रही थी। दामोदर रंजिनी के ठीक सामने बैठे हुए थे। मौन तोड़ते हुए सहसा वे बोले—

'चकोरी चंदा को निहार रही है क्या?'

रंजिनी ने कुछ भी जबाब न दिया। वह फिर भी एकटक चाँद को ही निहारती रही। घोरपड़े ने उत्तर की प्रतीक्षा न की। वे रंजिनी की गोद में सर रख कर लेट गये। रंजिनी कहानियों में पढ़े हुए ढंग से दामोदर के बालों में धीरे धीरे अपनी उँगलियाँ फेरने लगीं। नाव

चलाने वाले मल्लाह को घोरपड़े ने मुंह फेर कर नाव चलाने को कहा और उसके लिये पैसे भी कुछ ज्यादा देने को कहा !

नाव चलती रही। उतरते चाँद की मटमैली चाँदनी में रंजिनी का मुंह देखते हुए दामोदर ने कहा—

'कुछ गाओ रंजिनी !'

रंजिनी ने खांस कर अपना गला साफ करते हुए गुनगुनाया—

'नील गगन पर बादल डोले
डोले हर इक तारा !'

घोरपड़े को यह गीत पूरा आता था। गोद में लेटे ही लेटे, उन्होंने आवाज लगाई—

'चांद के अंदर बुढ़िया नाचे
ठुमुक ठुमुक दिर दारा !'

गाते गाते वे बेचैन हो गए ! उनकी आँखें नम हो आईं।

रंजिनी के मन में जाने क्या क्या बातें चक्कर काट रही थीं। उपन्यास की नायिकाओं से वह अपना मिलान करना चाहती थी, लेकिन हर जगह वह अपने को उनसे अलग पाती थी। इधर किसी उपन्यास को उसने पढ़ा था जिसमें नायिका का 'एबाशिन' दिखाया गया था ! फिर वह सोचने लगी कि क्या सचमुच इस युग की नायिका के लिए एबार्शन जरूरी है ? सहसा उसके अंदर सोई हुई फ्लोरेंस नाइटेंगिल जाग पड़ती और वह कह उठी 'छिः ! कायर !!'

उधर रंजिनी के मन में यह ऊहापोह चल रहा था और इधर दामोदर घोरपड़े उनकी गोद में पड़े पड़े 'ओह ! ओह !!' करके तड़प रहे थे ! एकाएक रंजिनी को यह याद आ गया कि वह इस वक्त गंगा

मे नौका बिहार कर रही ह और इस सारे रोमांस में उनका कहीं पार्ट भी है! बोलीं—

'बहुत देर हो गई! अब मुझे वापस जाना चाहिए! अब वे भी आ गए होंगे। मैं न मिलूँगी तो वे मेरे बारे में क्या सोचेंगे?'

घोरपड़े बोले—

'रहने भी दो! कहने भी दो! चुप रहो इस वक्त! आह!! तुम्हें इस चाँदनी में भी अपने घर की, अपने पति की याद आ रही है?... आखिर क्या मुझे डर नहीं है? मेरी पत्नी भी तो मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी! वह भी तो मुझ पर नाराज होंगी! लेकिन मिस रंजिनी प्यार कभी डर से मरता नहीं है! वह तो अमर है, अजिर है, पवित्र है पावन है। वह...' इतना कह कर वे 'ओह ओह!' करने लगे और उसकी गोद में अपना सिर रगड़ने लगे।

जब रात काफी हो गई तो नाव किनारे लगी। उतर कर वे घर की तरफ चले। घर आते आते फिर दोनों आगे पीछे हो गये। पत्नी के लिये पति की तरह और पति के लिये पत्नी की तरह प्रतीक्षा करते हुए बेचारे नौकर ने उठकर दरवाजा खोल दिया। रंजिनी पहिले आ गई और बैठक में बैठ गईं। दामोदर बाद में आए। बैठक में उन्हें प्रतीक्षा करता हुआ मान कर बोले—

'माफ करना! आज बड़े देर हो गई! वे लोग माने नहीं। जबर्दस्ती रोक लिया। काफी लम्बा प्रोग्राम था, क्या करें?'

अक्सर जब घोरपड़े घर में पहिले घुस आते तो रंजिनी को यही वार्तालाप करना पड़ता था!

इसके बाद वे दोनों अपने अपने कमरों में चले गए। अपने

चेहरों पर उन्होंने नाराजगी का भाव पैदा कर लिया। दोनों का खाना नौकर ने दोनों के अलग अलग कमरों में लाकर परोस दिया। खाना खाकर, थाली कमरे के बाहर निकाल कर वे एक दूसरे से रूठ कर सो गए।

o

पाँच

तीन सप्ताह तक रोमांस के इस कार्यक्रम का अभ्यास करते करते रंजिनी अब पटु हो रही थी। दामोदर ने इधर उसे कुछ वेशभूषा संबंधी दीक्षा भी दी थी। घोरपड़े जी का यह कहना था कि प्रेम करने के लिये, न प्रेम करने के लिये, विराग के लिये, संन्यास के लिये, पढ़ाई के लिये, सबके लिये, सब उम्र के लिये अलग अलग तरह की वेशभूषाएँ हैं! विभिन्न प्रकार की यह वेशभूषाएँ आदमी की चित्त-वृत्तियों पर संयम लगाती है, उनका मार्ग प्रशस्त करती है! घोरपड़े ने उसे समझाया था कि पहिनावा का चुनाव विभिन्न प्रांतों के हिसाब से न होकर, उम्र के हिसाब से होना चाहिये! इससे एक राष्ट्रीय वेशभूषा भी तैयार हो जायगी और वेश की अधिकतम उपयोगिता भी सिद्ध हो सकेगी।

मनोविज्ञानी घोरपड़े का कहना था कि बचपन में यदि फ्रॉक और जांघिया से काम चल सकता है तो जवानी में शलवार और गरारा उम्र की शोभा बढ़ाती है; अपने यहाँ पहिनी जाने वाली लाँगदार धोती को तो वे सिर्फ बुढ़ियों की राष्ट्रीय वेशभूषा मानते थे! चूँकि कपड़े मानसिक वृत्तियों को भी निर्धारित करते हैं, इस-लिये वे उसके चुनाव पर बहुत जोर देते थे। उनका ख्याल था कि यदि अपनी चित्त वृत्तियों को शिथिल करने की जरूरत हो तो गेरुए रंग के ढीले कपड़े पहिनने चाहिए किंतु यदि वृत्तियों को सचमुच चंचल

ही बनाना हो तो निश्चित ही ऐसे कपड़ों को पहिनना चाहिए जिसमें बदन का ज्यादा से ज्यादा हिस्सा बाजार के चलते हुए लोगों को दिखाना चाहिए ताकि उनके कलेजों पर साँप लोट जाय। साड़ी को वे अक्सर सिर्फ मन बदलने वाली चीज कहा करते थे। साड़ी के साथ पहिनने वाले वे ऐसे ब्लाउज बताते थे जो सिर्फ छः गिरह कपड़े में तैयार हो जाते थे। अन्य वेशों में भी घोरपड़े जी का ख्याल था कि पहिनावा ऐसा ही होना चाहिए जो बदन के उन हिस्सों का उभार उम्दा ढंग से दिखा सके, जिन्हें ढँकने के लिये कभी किन्हीं मूर्ख आदमियों ने कपड़े की सृष्टि की थी।

'मिस' सुब्बारंजिनी को अब यह समझ में आ गया था कि किस तरह का प्रेम करते वक्त किस तरह का कपड़ा पहिनना चाहिये! कहीं भी आते जाते या घर में रहते वक्त, वे इस बात का ध्यान रखतीं कि उस अवसर पर किस तरह के कपड़े पहिनने चाहिये और कैसे कपड़े उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं! आंध्र युवती ने अपनी सारी प्रांतीयता की भावना वेशभूषा के संबंध में भी छोड़ दी!

घोरपड़े जी चूँकि मनोविज्ञान को जीवन से संबंधित मानते थे और समझते थे कि वह उसे सर्वजन सुलभ बना कर ही दम लेंगे, इसलिये उन्होंने जीवन के सभी पहलुओं पर मनोविज्ञान की दृष्टि-कोण से सोचा था। परम भक्त श्री कृष्ण माधव जी मनोविज्ञान के इस प्रयोग को देख कर एकदम भौचक थे। एक दिन समय पाकर उन्होंने घोरपड़े जी से पूछा—

'कपड़ों के बारे में आपकी जो धारणाएँ हैं, वह मुझे भाभी जी ने बतायीं है! किंतु वह आपके सिद्धांतों से अर्थात् अचेतन, पशु प्रवृत्ति और अखबार से कहाँ तक मेल खाती है?'

बागढ

'क्यों नहीं? यदि हम अपने अचेतन मन को जान कर उसी के अनुसार कपड़ों का उपयोग करें तो क्या हमारी चित्त वृत्तियाँ नहीं सुधरेंगी? उसका भी विकास उसी ढंग से होगा!'

'खैर होगा! इसमें आप फिर सौंदर्य प्रसाधनों का क्या स्थान मानते हैं?' कृष्णमाधव जी ने अपने गुरु वकील श्री घोरपड़े के मुक्ति-दायक सिद्धांतों की प्रशंसा के 'मिस' (यहाँ 'मिस'—अर्थात् बहाने!) यह भी पूछ डाला!

मनोवैज्ञानिक घोरपड़े अपने गहन अध्ययन को जैसे टटोलते हुए बोले—

'व्यक्ति के जीवन में सदा पूर्ण होने की आकांक्षा रहती है। यही चीज प्रवृत्ति बन कर हमारे अचेतन में घूमती रहती है! यद्यपि उप-चेतन से उद्भूत कतिपय कुंठाएँ हमारे वैयक्तिक जीवन में इस अपूर्णता को सदा दूसरे माध्यमों से प्रकट करती रहती हैं किंतु ध्यान से देखिए तो आपको खुद पता चलेगा कि वे कुंठाएँ मात्र इन सौंदर्य प्रसाधनों का अभाव हैं। हम जैसे हैं, यदि उससे अधिक अच्छे लग सकें तभी हमें हर तरह का हार्दिक संतोष होगा। दूसरे अगर अस्लियत को समझने में साफ धोखा खा जायें तो कितना आनंद मिलता है? उससे बढ़ कर और प्रसन्नता क्या हो सकती है? इससे दूसरे की तुष्टि होती है। किसी पुलिस कांसटेबुल को साफ पहिचान लेने पर भी यदि आप उसे हवलदार साहब या दीवान जी कह कर पुकारें तो वह अपनी तरफ से आपका सात खून माफ कर देने के लिये चिल्लाने लगेगा।' सिद्धांतों की व्याख्या करते हुए वकील साहब जुर्म के इस मसले पर गौर करके मुस्करा उठे!

'लेकिन फिर इसके लिये अखबार कहाँ तक सहायक सिद्ध होते

हैं? आप तो अखबार को भी इसी के साथ खींचते हैं ना?' कृष्ण-माधव जी ने जैसे उत्तर जानते हुए भी एक मूर्ख की तरह जान बूझ कर प्रश्न किया!

घोरपड़े उसी अदा में मुस्कराए जिस तरह याज्ञवल्क्य 'जानी चहहु राम गुन गूढ़ा---कीन्हृयो प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा!' कहते हुए मुस्कराए होंगे। बोले—

'आज का अखबार मानव-जीवन की रिपोर्ट नहीं देता, उसका निर्माण करता है! आज मानव की गति, उसकी अगति, उसका चेतन एवं अवचेतन इसी अखबार की ही देन है! बदलते हुए मानव मूल्यों की कसौटी, उसकी परख अखबार ही है! जब अखबार हमारे समस्त जीवन की प्रेरणा है तो फिर उसी के द्वारा सौंदर्य प्रसाधन भी सामने आते हैं! किसी भी अखबार को देख कर आप यह जान सकते हैं कि संसार की या भारत की कौन सी फिल्मी तारिका कौन सा साबुन, तेल कंघी, स्नो, पाउडर, क्रीम, शैम्पू, इत्र, मंजन, अंजन, लगाने के बदौलत ही उस ऊँचे स्तर की तारिका हो सकी है। उसी के साथ उनके अनमोल शब्द या उनका लिखा सार्टीफिकेट भी साथ में नत्थी रहता है। इससे बड़ा सबूत और आप क्या चाहते हैं? अखबार न होते तो कौन इसके विज्ञापन करता और विज्ञापन न होते तो किस प्रकार सौंदर्य प्रसाधनों के बदलते हुए मूल्य हमें पता लग पाते! जन-हित का मार्ग ही अवरुद्ध हो जाता!'

कृष्णमाधव जी, चूँकि सरल स्वभाव के थे इसलिये अक्सर कुछ समझ में आ जाता था, अक्सर उनकी समझ में कुछ नहीं भी आता था! जो नहीं समझ में आता था, उसके लिये वे कुछ एतराज भी नहीं कर पाते थे! लेकिन फिर भी वे अपनी ओर से घोरपड़े जी का

भाषण हमेशा शून्यवत् मुँह खोले सुना करते थे ताकि जो कुछ कान से जाने से रह जाय वह मुंह के जरिये पेट में ही चला जाय! ऐसा न हो कि कोई सूत्र वक्त जरूरत उनके अंदर खोजने से न निकले! कृष्णमाधव जी अक्सर अपने खाली वक्त में और खाली वक्त उनके पास बहुत था—घोरपड़े के घर टहलते हुए आ जाया करते थे। ऐसे अवसर पर कभी कभी उनका व्यवहार देख कर इन्हें बड़ा ताज्जुब होता था। वैसे तो कृष्णमाधव जी काफी दुनियाँ देखे हुए आदमी थे मगर यहाँ पर घोरपड़े जी के हर काम उन्हें एक विचित्र रहस्य-मयता में ढंके हुए दिखाई पड़ते थे। उनमें वे कोई राज़ समझते थे इसीलिये वे चुपचाप उनकी लीला दम साध कर देखते और उसे अपने आप अकेले में पसंद करने की कोशिश किया करते थे!

बीस बाईस दिन तक वकील साहब अपने इस रोमांस को चालू किये रहे। दोनों ही अपनी मासूम अदाओं से एक दूसरे को रिझाने का भगीरथ प्रयत्न करते रहे। पूरा दिन वे इस बात की खुशी में काट देते थे कि अभी शाम आएगी, वे अंधी गलियों में भटकेंगे, डूबी डूबी सी गरम साँसें खींचेंगे, 'उफ उफ" की आहें भरेंगे और फिर एक झटके के साथ गली के पार हो जायेंगे!

रोज इसी तरह होने के बावजूद भी उनका मन खिंचा खिंचा रहा। मनोविज्ञानी घोरपड़े को सहसा यह भ्रम हुआ कि जो कुछ भी हो रहा है, इसमें उनका पूरा हाथ नहीं है! यह तो सब कुछ किसी के चाहने पर हो रहा है! वे किसी के इशारों पर नाच रहे हैं। उन्हें यह लगा कि उनका यह सारा प्रेम व्यापार अपने से उद्भूत न होकर एक प्रतिक्रिया मात्र है! प्रतिक्रिया का प्रभाव कभी स्थायी नहीं हो सकता, यह सोच सोच कर दामोदर घबड़ाने लगे।

'मिस' रंजिनी भी इस नाटक से घबरा उठी थीं। बीस बाईस दिन में ही उन्हें अपने पर जितना संयम और अनुशासन लेना पड़ा था, वैसी यातना उन्होंने अब तक नहीं भोगी थीं। घर में जिस वक्त वे अकेले रहतीं, उस वक्त उन्हें अपना मन टटोलने का समय मिलता! उन्हें स्पष्ट लग रहा था कि उनका मन उनका विरोध कर रहा है! फिर भी वे चाहती थीं कि किसी तरह वे अपने मन को ऐसा बना लें कि वह प्यार ग्रहण करने के लिये पूरी तरह से तैयार हो जाय! रंजिनी को यही लगा कि अभी उनके तप में कहीं कुछ खोटा है जिसके कारण मनोवैज्ञानिक का तजुरबा पूरा नहीं उतर रहा है।

मुकदमे के लिये वकील साहब कचहरी बहुत कम जाते थे! हाँ, अक्सर अपने मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिये, कुछ विचित्र 'केसों' को देखने के लिये कचहरी जरूर चले जाया करते थे! उस दिन कचहरी तो वे जरूर गए लेकिन बराबर अपने रोमांस के बारे में ही सोचते रहे। सोचते सोचते उन्हें समझ में आया कि किसी से लगातार एक जैसा संबंध और निकटता बनी रहने पर, प्रेम नहीं बढ़ सकता है! घर लौटे तो चाय का प्याला साथ साथ पीते हुए उन्होंने सुब्बारंजिनी से कहा—

'जो तुम कई दिन से सोच रही हो, वही मैं भी सोच रहा हूँ! हमारे मन में भी वही शंकाएँ हैं! रोमांस का पूरा असर हमारे ऊपर नहीं पड़ रहा है! बात यह है कि हमें अब नया मोड़ अपनाना चाहिये। बिना नई गति और नई दिशा पाए हुए, रोमांस अपने शिखर को नहीं प्राप्त कर सकता!'

रंजिनी प्रायः ऐसे मौकों पर चुप रहती थी। आज भी चुप रही।

छाछठ

घोरपड़े ने जलती हुई सिगरेट के टुकड़े से नई सिगरेट जलाते हुए कहा—

'यह तो मानना ही पड़ेगा कि हम अपने निश्चित कार्यक्रम की दिशा में अपने आपको अनुशासित करने में बहुत हद तक सफल हुए है! लेकिन इतना सा तजुरबा हमें सिर्फ आगे की राह दिखाता है! अगर हम इसका विकसित प्रयोग कर सके तो निश्चित ही हम दुखी दम्पतियों की भुथरी चेतना को अपने इस प्रयोग के रेगमाल से रगड़ कर चमका देंगे! इसके लिये हमें तुम्हें फिर आगे कदम बढ़ाना पड़ेगा! अगर हम ऐसा नहीं करते तो रोमांस के इस कार्यक्रम में भी वही ऊब हमें आकर घेर लेगी!'

'रंजिनी को अब जैसे होश आया। बोली—

'तो अब क्या करना होगा?'

'इसके लिये अब यह करना होगा कि हम और तुम अलग अलग रहें। मन से अलग रह कर भी हम घर के आगे झुक जाते है! घर की भौतिक चहारदीवारी हमें बराबर समझाती रहती है कि हम और तुम उसी घर के अंश हैं! यही भूलना हमारे लिये सबसे आवश्यक है। जब तक हम यह नहीं भूल सकेंगे तब तक हम कुछ भी नहीं कर सकेंगे!'

'लेकिन यह भला कैसे होगा? आप...?'

'मैं सोच रहा हूँ कि मैं अपने घर के आस पास ही कोई मकान लेकर रहूँ। दो एक दिन से मैंने तलाश भी शुरू की है! जब हम अलग घरों में रहेंगे तभी हमारे मन की निकटता और शारीरिक दूरी बढ़ेगी! मन की निकटता को अपने संवेगों से अधिक प्रबुद्ध बना कर, हम उन सूत्रों को आसानी से पकड़ लेंगे जो एक ही मुहल्ले

में रहने वाले युवक युवतियों में सहज ही एक 'मुहल्ला-रोमांस' का विचार जगा देता है!'

रंजिनी समझ रही थी कि उसे अब अपने मन से लड़ाई लड़नी है! फिर भी भारतीय नारी का कर्तव्य है कि वह अपने पति के इंगितों पर चले। उसने एक बार तर्क फिर दिया——

'अब तक हम लोग जो कुछ करते धरते थे, वह घर के भीतर और लोगों की नजरों से दूर रहता था! अब आपके घर के बाहर रहने से भला दूसरे लोग कैसी कैसी बातें हम लोगों के बारे में कहेंगे?'

'लोग क्या कहेंगे?' यह सुनकर वकील साहब तैश में आ गये। आज तक उन्होंने 'लोग क्या कहेंगे' के बारे में न तो कभी सोचा था और न आगे सोचना ही चाहते थे! रंजिनी इस बात को जानती थी लेकिन फिर भी जान बूझ कर उसने वकील साहब के नाक पर रक्खी क्रोध की गठरी उतार कर उनकी जबान पर ला रक्खी।

'कौन क्या कहेगा, इसकी मुझे रत्ती भर परवाह नहीं है? ... तुम्हें मेरी परवाह है या लोगों की? कौन क्या कहेगा की जिम्मेदारी मेरे ऊपर है, आपके ऊपर नहीं!!'

'लेकिन अगर कहीं मिसेज चारिया को भी यह पता चला तो ...' मिसेज चारिया का नाम सुना कर रंजिनी ने वकील साहब के तैश पर जैसे दिसम्बर में उनके सिर पर रात भर का रक्खा हुआ पानी उँडेल दिया। वकील साहब कुछ सकपका उठे। तर्क की दूसरी बानगी पेश करते हुए वकील साहब आगे बोले——

'मिसेज चारिया? ...तो क्या हुआ? हम तुम समझा देंगे! बहुत होगा तो कैप्टन चारिया दो चार सेर टमाटर का रस पीने के

लिये मजबूर करेंगे और क्या ? मगर यह तो देखो ! यह तो मनोवि-विज्ञान का इतना बड़ा तजुरबा होने जा रहा है जितना बड़ा आज तक संसार में कभी हुआ भी नहीं ! तुमने क्यूरी दम्पति का नाम सुना होगा ! दोनों ने मिल कर विज्ञान को क्या दे डाला ! ! बिना अपने शरीर को कष्ट पहुँचाये हमारा तप पूरा नहीं होगा ! हमें अपने संवेगों को हर तरह से नियंत्रित करना होगा। यही तो हमारी प्रेरणा के स्रोत हैं। . . उन पर जय पाना ही हमारी असली विजय होगी। अच्छा देखो मुझे आज शाम को पिक्चर देखने जाना है। कई दोस्तों ने बुलाया है ! वक्त हो रहा है। बाते खत्म करो ! !'

चाय की मेज पर से दोनों उठ गए। रंजिनी यह इशारा समझ गई। अपनी सहेली घर ज्वॉयपार्टी में जाने का कार्यक्रम बताती हुई वे भी अपने कमरे में जाकर तैयार होने लगीं !

तमाशा अपने में हमेशा अच्छा ही लगता है ! इसी लिये लोग तमाशा देखना पसंद करते हैं ! आदमियों की बात जाने दीजिए, सुनते हैं वह परमात्मा भी तमाशा देखने का काफी शौकीन है। जिसने इस सारी दुनियाँ का गोरखधंधा ही महज लुत्फ़ के लिये, लीला के लिये, बना डाला, वह फिर किसी भी तमाशे से क्यों इन्कार करेगा ? इसीलिये जब बैठे बैठाए उसे दामोदर और रंजिनी का तमाशा मुफ्त देखने को मिला तो उसने एक समझदार-दर्शक की तरह इसमें योग देना प्रारंभ किया। शायद इसी सहयोग का नतीजा था कि वकील साहब के घर के सामने अघोरनाथ चटर्जी नाम का पेंशन प्राप्त बंगाली जो कलकत्ते से आकर काशीवास कर रहा था, रातो रात भगवान भोलानाथ के चरणों में जा पहुँचा ! बूढ़े बंगाली के मरते ही वह मकान खाली हो गया। वकील साहब खुद भी पहुँच के

आदमी थे और दूसरे परमभक्त कृष्णमाधव जी से भी पूरी सहायता मिली। नतीजा यह हुआ कि मकान पर वकील साहब का कब्जा हो गया। कृष्णमाधव जी की तत्संबंधी जिज्ञासा का उत्तर दामोदर ने यूँ दिया कि चूँकि उस छोटे से घर में रह कर न तो पूरी तरह कच हरी के ही कागजात रखे जा सकते हैं और न उसमें हर वक्त मनोविज्ञान का अध्ययन ही संभव हो पाता है इसीलिये जितना लिखने पढ़ने का समय है, वह सब इस दूसरे घर में बिताया जायगा।

वकील साहब के सामने का यह दुमंजिला मकान दो आदमियों के एक परिवार के रहने के लिये काफी था। वल्कि उस मकान की मकानियत को ठीक तरह से समझने के लिये आप यह समझें कि पुराने जमाने से वह परिवार-नियोजन की योजना को ध्यान में रख कर ही बनाया गया था। छोटा होने के अतिरिक्त मकान और भी कई अच्छाइयाँ थी—मसलन, घर के सामने कोई फुलवारी की जगह नहीं थी क्योंकि बनारस के लोग घर के सामने फुलवारी न रख कर घर से बीस मील की दूरी पर अपनी बगिया रखने में विश्वास करते थे! (शायद उनका यह ख्याल रहा हो कि घर के सामने फुलवारी रखने से मन की वे भावनाएँ ज्यादा जोर मारेंगी जो दुनियाँ में और किसी काम का नहीं रहने देतीं!!), घर के हर कमरे यानी तीनों कमरे सिर्फ इतने बड़े थे कि उनमें एक ही चारपाई पड़ सकती थी (दो चारपाइयों में स्वास्थ्य की हानि की संभावना रहती है न!), मकान का आँगन एक गहरा कुँआ जैसा लगता था (उसमें धूप से बचत होती थी!) मकान में एक छत भी थी लेकिन वहाँ तक पहुँचने के लिये कोई सीढ़ी नहीं थी! गरमियों में छत पर लेटना, फिर मुहल्ले में रहकर, यह किसी भी मियाँ बीबी को शोभा नहीं देगा,

पाँच

शायद यही सोच कर मकान मालिक ने शालीनतावश सीढ़ियाँ नहीं बनवाई थी ! फिर भी उसमें एक सबसे बड़ी अच्छाई यह थी कि ऊपर एक कमरा था। कमरे के सामने एक छज्जा था जो सड़क पर खुलता था ! यह कमरा और छज्जा बिल्कुल ठीक वैसे ही थे जैसे कि खुद वकील साहब के घर में थे ! छज्जा ही देख कर मनोविज्ञानी दामोदर के मुंह में पानी भर आया था और उन्होंने इसे पाने के लिये जी तोड़ कोशिश की थी !

आपने इस कहानी को जब यहाँ तक यूँ जान लिया है तो अब आगे जरा दूसरे रूप में सुनिए ! ऐसा समझने में आपको कुछ आसानी भी होगी क्योंकि आपको सभी चीजें अपनी लगेंगी !

कुछ दिन हुए एक खाली मकान में कहीं से एक नवयुवक आकर बसा। नवयुवक अभी कमसिन था। उसकी मासूमियत उसके चेहरे पर बरस रही थी ! वह एकदम अकेला था और इस शहर में नया नया आया था। उसकी नौकरी शायद इसी शहर में कहीं लगी थी। शाम हो रही थी। पास पड़ोस के घरों में चिराग जलने लगे थे। मगर वह नवयुवक चुपचाप बैठा हुआ था। उदास,—दरवाजे के सामने, सूने आसमान को देखते हुए ! वह बड़ा अनमना लग रहा था।

उसे तो पूरा शहर वीराना और अपरिचित लग रहा था। जैसे किसी की याद उसे सता रही थी। एकाएक वह आहिस्ता से उठा। उलझी हुई अपनी किताबों के ढेर को वह सहेज सहेज बेंत और बाँस की छोटी छोटी अल्मारियों में रखने लगा। उसका मन नहीं लगा।

वह फिर आकर दरवाजा पकड़ कर सूने आसमान की तरफ देखने लगा! सहसा सामने वाले मकान के ऊपर वाले कमरे की खिड़की खुली। युवक एकटक निहारने लगा। नीली नीली रोशनी के बीच उसे एक अत्यंत सुन्दर रमणी का आधा धड़ बार बार आना जाता और सामान को इधर उधर रखने में व्यस्त दिखाई पड़ रहा था। अपने कमरे का सूनापन युवक को भूल गया। नवयुवक चुपचाप उस युवती के कार्य कलाप को देखने में मगन हो गया। नवयुवक उसे देख रहा था मगर रमणी को यह जरा भी पता न लगा कि किसी की रसमय निगाहें उस पर डोल रही हैं! रमणी को देख कर नवयुवक के मन में बड़ी अजीब अनपहिचानी सी धड़कन होने लगी! उसे इस रमणी में ऐसा आकर्षण दिखाई पड़ रहा था कि वह अपना आपा भूला जा रहा था। यदि बीच में सड़क न होती तो अब तक वह उस कमरे में इसी सम्मोहन में खिंच कर पहुँच गया होता! उसका सारा सूनापन, अकेलापन और उदासी इसी आकर्षण में बिंध गए!

सहसा खिड़की बंद हो गई। नीली रोशनी की एक हल्की लकीर अब भी रोशनदान से आती रही! नवयुवक बड़ी देर तक उसी नीली लकीर को देखता रहा फिर वह अपनी किताबों को सम्हालने लगा। उसका मन नहीं लग रहा था। सीढ़ियों से उतर कर वह पास के ही एक होटल में खाना खाने गया। खाना वह खा ही रहा था, कि सामने

बहत्तर

से उसने सहसा उसी रमणी को तेजी से जाते देखा। जब तक वह यह देखता कि वह कहाँ गई, तब तक वह आँखों से ओझल भी हो गई। खाना खाकर नवयुवक किसी तरह घर वापस आया। बंद कमरे में वह चुपचाप अपनी चारपाई पर अपना बिस्तरा खोल कर पड़ गया। उसे नींद नहीं आ रही थी। वह करवटें बदल रहा था। बार बार उसे सामने वाले घर की युवती का चेहरा याद आ रहा था! 'ओह, कितनी अच्छी है, यह सामने वाले घर की औरत! पता नहीं कौन है? पता नहीं इसके घर में और कौन कौन हैं? काश . . .!' उस पर कमरे का सूनापन फिर छा गया और वह फिर हर करवट बदल कर अपने तकियों के 'पोजीशन' बार बार 'एडजस्ट' करके सोने की कोशिश करने लगा!

सुबह हुई। नवयुवक उठ कर जब अपने छज्जे पर खड़ा हुआ, मुलायम रेशों वाली तौलिया कंधे पर डाले मैकलीन टूथ पेस्ट से दाँतों पर ब्रुश चला रहा था उसी वक्त सहसा फिर सामने के कमरे की खिड़की खुली। वही रमणी इस बार फिर सामने थी। उसने खिड़की पर शीशा ला रक्खा और उसके सामने खड़ी होकर अपने बालों को गूंथने लगी। लोटे के पानी को मुंह में डाल कर जब नवयुवक ने जैसे उसका ध्यान खींचने के लिए जोर जोर से गरारा करना शुरू किया तो उस रमणी ने सच ही अपनी आँखें उठाईं। दोनों की आँखें चार हो गईं! कुछ देर के लिए दोनों अपने आपे को भूल कर एक दूसरे को देखते रह गए! रमणी के बालों में कंघा जहाँ फँसा था, वह वहीं रुका रह गया। नवयुवक भी एक क्षण के बाद, जैसे इस बात को समझ पाया कि यह सब क्या हो रहा है! वह शर्मा

गया । रमणी भी झेप गई ! उसने मस्करा कर खिड़की बद कर ली !

खिड़की बंद हुई ओर नवयुवक जैसे एकदम बेचैन हो गया। उसे आज जीवन में पहिली बार लगा कि कोई ममता भरी आँखें उसे निहार रही थीं। उसे यह महसूस हुआ कि उन आँखो मे जरूर, हो न हो, कही प्यार छिपा हुआ है ! आखिर वह लड़की इतने गौर से क्यों देख रही थी ? नवयुवक यही सोचता हुआ अपने कमरे में आ बैठा। खुद उसमें ऐसा आकर्षण नही है ! कोई परिचय भी नहीं है, पर फिर ऐसा क्यों हुआ ? नवयुवक यह सब सोच ही रहा था कि कमरे की खिड़की फिर खुली और उसमें मे वही खिलखिलाता हुआ चेहरा फिर झाँकने लगा। इस बार इस नवयुवक ने उस रमणी का पूरा चेहरा सचेत होकर देखा ! खिड़की इस बार खुली ही रह गई लेकिन वह चेहरा वहां से हट गया।

इस तरह कई दिन बीते। खिड़की बंद होती और खुलती रही। छज्जों और कमरों में प्रणय की बाती विकसित होती रही । इस बीच नवयुवक ने मुहल्ले में घूम घाम कर यह जानकारी कर ली होगी कि वह रमणी कौन है और क्या काम करती है ! अब वह उसके बारे मे धीरे धीरे सब कुछ जान गया था। उसकी हिम्मत भी पहिले से बढ़ गई !

एक दिन उससे जब इस तरह साँसें भरते और कायरों की तरह कमरे में लेट कर अपने भाग्य को कोसने से मन ऊब गया तो उसने हार कर कागज की एक चिट फाड़ी। फाउन्टेनपेन लेकर वह बैठ गया और उसने सोचा कि आज वह किसी न किसी तरह अपने दिल का सारा उच्छ्वास निकाल ही डालेगा ! उसने सोचा आखिर इस तरह मन

में घुटते रहने की व्यथा ही तो हमारे समाज की सबसे बड़ी देन है! उसने तै किया कि वह समाज को तोड़ डालेगा! अब वह हरगिज नहीं मानेगा! -उसके मन का चोर एक बार उसका हाथ पकड़ने को तैयार हो गया लेकिन वह सच्चे 'साहु' की तरह हाथ न आया। उसने फाउन्टेनपेन जोर से पकड़ लिया। सोचने लगा कि किस तरह का संदेश वह उसे भेजे जिससे कि किसी भी तरह के भ्रम की गुंजाइश न रह जाय। अपने हाव भाव और अपनी हरकतों से दोनों छज्जे मे ही काफी खुल चुके थे अब सवाल सिर्फ अपनी भड़ास को व्यक्त करने भर का था! इसीलिए, अब वह इस संदेश में किसी तरह का भ्रम नहीं रहने देना चाहता था। अंत में उसने 'डाइरेक्ट एक्शन' (सीधी कार्रवाई) लेने की सोची! उसने चिट पर लिखा—

मैं तुम पर मरता हूँ।

इतना लिखने से उसे पूरा यकीन हो गया कि इससे भ्रम की कतई गुंजाइश नहीं रह जायगी। उस लड़की को यह समझ में ही आ जाना चाहिए कि नवयुवक क्या चाहता है! उस कागज की चिट की गोली बना कर वह बैठ गया। उसने तै कर लिया कि अबकी खिड़की जैसे ही खुली तैसे ही वह यह गोली इस छज्जे पर से उसके कमरे में फेंक देगा और अपने भाग्य का निर्णय कर लेगा। पर भाग्य की ही बात, कि उस दिन दिन भर खिड़की बंद ही रही। नवयुवक दिन भर हाथ में वह गोली लिए बैठा ही रहा लेकिन उसे वह गोली फेंकने का अवसर न मिला। इंतिजार ही इंतिजार में वह उस दिन होटल में खाना खाने भी नहीं जा सका। पर उस वज्र-हृदया खिड़की के पट नहीं खुले! नवयुवक एक बार घबड़ा उठा। तरह तरह की बातों से उसका मन डोलने लगा। शायद वह औरत, इसके आवारापन से ऊब कर कहीं

दूसरी जगह रहने के लिए तो नहीं चली गई ! कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह जो कुछ भी प्रेम समझ कर कर धर रहा था, उसे वह मात्र मूर्खता समझ रही हो और उसी पर हास्यास्पद ढंग से हँसती रही ! नवयुवक यह सोच कर भी एक बार हड़बड़ा उठा कि कहीं उसने पुलिस में खबर न कर दी हो ! फिर उसने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि उसके कुछ और रिश्तेदार आ गए हों, और वह रमणी उन सब में आज बेहद व्यस्त हो। ऐसी हालत में वह कागज की गोली फेंकना ठीक होगा या नहीं; दिमागी चक्करों के फेर में वह टकटकी लगाए खिड़की की तरफ दिन भर देखता रहा ! इतवार की छुट्टी का दिन था, अन्यथा जिस मनोयोग से वह देख रहा था उसके लिए उसे एकाध दिन की छुट्टी भी लेने की जरूरत पड़ सकती थी ! आखिर-कार खिड़की खुली और उसमें से वही खिलखिलाता हुआ चेहरा नीली रोशनी के बीच करीब दस बजे रात में झाँकता दिखाई पड़ा ! अपने इधर उधर के ख्यालों में नवयुवक इतना डूब गया था कि उधर ही देखते रहने पर भी उसे यह नहीं पता चला कि खिड़की खुल गई है ! अतिथि की तरह युवक को विचारों में डूबा हुआ देख कर उस रमणी ने खाँसा। तब इसने चौंक कर उसकी ओर देखा। देखते ही इसने अपनी मुट्ठी में बंद की हुई गोली उसकी तरफ फेंक कर मारी ! सामने से ढेला आता हुआ देख कर उस रमणी ने इसे पागल समझ कर, डर के मारे खिड़की भड़ाक से बंद कर ली। खिड़की बंद हो जाते देख और संदेश के उचित स्थान तक न पहुँच पाने के भय से उस युवक का दिल बैठने लगा। उसी वक्त जाने क्या सोच कर वह रमणी छज्जे पर दरवाजा खोलकर निकली और उसने वह गिरी हुई कागज की गोली उठा ली। यही सच्चा प्रेम था ! नवयुवक ने

उसे हल्की नीली रोशनी के बीच उस कागज को खोल कर पढ़ते हुए देखा। उसका दिल बल्लियों उछलने लगा! उसके भाग्य का निपटारा इसी क्षण होने वाला था! यही क्षण था जब उसे यह आभास हुआ कि स्वर्ग और नरक के ठीक बीचोबीच भी कोई विश्रामस्थल है जहाँ वह इस वक्त पहुँच कर ठहरा हुआ है! आखिर उसने देखा कि वह लड़की एक दूसरे कागज पर कुछ लिख रही है। इतना ही देख कर उसे चैन पड़ गई। यदि उसका रुख कुछ दूसरा हुआ होता, तो वह उसके लिखे हुए कागज को फाड़ कर फेंक देती और कुछ भी जवाब न देती!

युवक धड़कते मन से प्रतीक्षा ही कर रहा था कि सामने के कमरे का दरवाजा बंद हो गया। रोशनी आनी बंद हो गई और उधर युवक के मन पर अँधेरा छा गया! खिड़की फिर खुली। उसमें से उसका चेहरा फिर निकला। इस बार उसके हाथ में एक कागज की गोली थी जो उसने इस युवक के कमरे की ओर फेंकी। कमजोर हाथों से आई हुई वह कागजी गोली छज्जे पर ही गिर पड़ी। युवक बिजली के मानिंद लपका। आती हुई कागज की गोली उसे नीली रोशनी में टूटे हुए सितारे की तरह लगी। उसने कागज उठा लिया। धड़कते हुए दिल से और काँपते हुए हाथों से उसने उस गोली को खोल डाला। रोशनी में लाकर उसे किसी तरह जल्दी जल्दी पढ़ने की कोशिश करने लगा। पेंसिल से लिखा हुआ था। कुल दो शब्द थे :

मैं भी

अपने विचारों में वह इतना खो गया था कि सहसा उसे इस 'मैं भी' का अर्थ ही समझ में नहीं आया। थोड़ी देर बाद जब उसके अवचेतन से उसका वह पुराना वाक्य विचार-मंथन के बाद अमृत

कुण्ड की भाँति बाहर निकला तब उसकी समझ में आया कि 'मैं भी' के मतलब हैं—अर्थात् 'मैं भी' मरती हूँ।' जैसे ही उस युवक के समझ में यह आया कि सामने के घर में रहने वाली वह साँवली स्वरूप की रमणी भी उसे उतना ही प्यार करती है तैसे ही वह उठ कर नाचने सा लगा! वह जैसे मस्त हो गया। उसे प्यार हो गया था!! सच्चा प्रेम इसी को कहते हैं!!

दिन भर प्रतीक्षा में बैठे बैठे वह भूख प्यास भुला बैठा था। सफलता मिलते ही उसे अपनी भूख की याद आई। उसने फिर जल्दी जल्दी एक कागज की गोली बनाई और उस पर लिखा :

आज दिन भर क्यों नहीं दीखीं ?

गोली ठीक निशाने पर जा गिरी। एक क्षण में जवाब आया—

आज दिन भर छुट्टी थी। पिकनिक पर गई थी।

युवक की जान में जान आई। उसकी सारी शंकाएँ निर्मूल थी, यह जान कर उसे जो चैन मिला, वह अंदाज के बाहर की चीज थी।

इसी तरह गोलियाँ का क्रम चालू रहा। वे अपना परिचय दे और पा चुके थे। एक दिन, उसने फिर गोली बनाई और दर्ज किया :

अच्छा, अब आगे क्या हो ?

गोली के जवाब में दूसरी गोली आई :

'कल्पना होटल में रोज सुबह शाम खाना खाने जाती हूँ। जब मिलना चाहो वहीं मिलना। घर के अंदर नहीं। मुहल्ले के लोग बहुत खराब हैं। बेकार शक करना इनका काम है! होटल में भी यदि किसी से मेरी चर्चा करना तो अपनी दूर के रिश्ते की बहन बताना। मैं तुम्हें सबके सामने 'मेरे भाई लगते हैं' ऐसा ही कहूँगी।'

रमणी जिस होटल में जाती थी, युवक उसे नहीं जानता था।

लगता है, अपने कपड़े फाड़ डालता है और फिर भी जब उससे नहीं रहा जाता तो वह अपनी बेसीढ़ी वाली छत पर बंदरों की तरह कूद फाँद कर चढ़ जाता है और दिन भर चिल्ला कर वहां से 'मेघदूत' का पाठ करता है ! जो ही उधर से निकलता उसे अक्सर सुनाई पड़ता है—

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम्
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण !

लेकिन काशी के वेदपाठी-वातावरण में किसी को एक बार भी यह चिंता नहीं व्यापती कि यह युवक कौन है, और इसे क्या हो गया है ? कभी सामने वाले घर की छत पर से रात में युवक को गुन-गुनाहट में कुछ कुछ यह सुनाई पड़ता—

'बेदर्दी बालमा कच्ची उमरिया न चीन्हें ।'

उस वक्त युवक से रहा नहीं जाता ! वह भी अपने कमरे में लेटे लेटे, या कभी जरूरत पड़ने पर छज्जे पर आकर भी, अपनी मोटी और कुछ कुछ बेहूदी आवाज में टेरता है—

'तड़पत बीते दिन रैन !'

रमणी की आँखों से युवक को यही लगता है कि उसके जीवन में जैसे एक भारी परिवर्तन आ गया है। वह दीवानी सी हो गई है। युवक उसी रस में डूबता जा रहा है। दोनों मगन हैं। सच्चे प्रेम में यही होता है !!

जैसा कि हर समझदार अब तक समझ गया होगा, आपसे भी यही उम्मीद है कि आप यह जान गए होंगे कि यह युवक और कोई नहीं स्वयं स्वनाम-धन्य दामोदर विष्णु घोरपड़े थे और वह रमणी भी कोई नहीं स्वयं महारानी सुब्बारंजिनी जी ही थीं।

०

छः

भोर हो रही थी । आसमान की गोद में उषा की रक्तिम आभा महावर लगे उन पाँवों की तरह लग रही थी जो अब सुबह आई जान कर हट जाने के लिए तैयार थे । जैसे चिड़ियों की चह-चहाहट उन पैरों को ताना मार रही थीं। हर पेड़ मूर्तिमान होकर कलरव करने लगा था गोया एक दूसरे से उनके बात करने का वक्त आ गया। जाड़े के मारे गंगा स्नान करने वाले पुण्यार्थी विभिन्न स्वरों में तरह तरह की आवाजें लगाते, सड़क के सन्नाटे को तोड़ते हुए चले जा रहे थे। कोई 'शंकर शंकर बम भोला' की रट लगाता तो 'शंऽऽऽऽकर' को इस तरह खींच कर कहता कि जैसे अपनी देह का सारा जाड़ा वह उसी खींच में निकाल देगा। दूसरा मंत्र की तरह रटता निकलता 'गंगा गंगा को जो बिसारे, वह जीती बाजी हारे।' कोई 'हर गंगे' और 'बम भोले' का नारा लगाता निकलता! 'बम भोले' कहने वाला भक्त सम्प्रदाय इस बात का अवश्य ध्यान रखता कि वह बम के उच्चारण में बम फटने की ध्वनि-साम्य अवश्य उपस्थित कर दे ताकि माया रूपी निद्रा में सोने वाले जान जायँ कि अब जगने का उपयुक्त अवसर आ गया है (क्योंकि वे खुद जाग गए हैं!!)। 'जै शंकर जै जै शंकर' कहने वालों को जाड़ा जितनी जोर का लगता उतने ही प्रकम्पित स्वरों को सुदृढ़ करके वह 'जै शंकर, जै जै शंकर' को 'झैं शंकर, झै झै शंकर' पुकारने लगते थे। सारा वातावरण एक

एक दिन उसका पीछा करके उसने उस होटल का पता लगा लिया। दूसरे दिन वह उसके पीछे दस मिनट बाद वहाँ पहुँच गया। युवक ने भी उसी होटल वाले से अपने खाने पीने का महीनेवारी हिसाब तै कर लिया। अब वह बराबर यहीं खाना खाएगा। अब घटना चक्र तेजी से आगे चलता है। सहसा उसकी निगाह सामने मेज पर एक कोने में बैठी हुई उसी युवती पर पड़ती है।

'अरे! तुम यहाँ?' कह कर युवक उसी मेज की तरफ़ बढ़ता है।

'अरे भाई साहब आप? आप यहाँ कहाँ?' दोनों ही अपने साधारण स्वर से कुछ ऊँचा करके इसलिए बोल रहे हैं कि होटल का मैनेजर और आने जाने वाले बेचारे इस बात को अच्छी तरह सुन लें और फिजूल शक की निगाहों से उन्हें न देखें!

युवक उसी मेज पर खाने के लिए बैठ जाता है। होटल का बेयरा उसका भी खाना लाकर उसी मेज पर लगा देता है। युवक नमक की शीशी उठाता है और कभी प्लेटों को इधर उधर खिसकाता है। रमणी उसकी सहायता कर देती है! इस सब में उनकी उँगलियाँ एक दूसरे के हाथों की उँगलियों से छू जातीं तो युवक काँप उठने की कोशिश करता! खाना खाते खाते अगर कभी दोनों के हाथ पास पास देर तक रह जाते, या ग्रास मुंह में रखते समय दोनों अपने सिर झुकाते और दोनों एक क्षण को एक दूसरे की गर्म गर्म साँसें महसूस करते तो यवक को कविता की किताबों में पढ़े हुए 'सिहरन' और पुलकन' जैसे भूले बिसरे शब्द याद आने लग जाते। जब कभी इतने से भी मनोवांछित प्रतिक्रिया नहीं मिलती तो युवक इधर उधर देख भाल कर चुपके से मेज के नीचे अपने पाँवों से उस रमणी के पाँवों को टटोलने और फिर उनको अत्यंत मुलायमियत

के साथ दबाने की कोशिश करता! ज्यों ज्यों पाँव दबता है, रमणी का चेहरा खिल उठता है!

तीन दिन से यही हो रहा है। रमणी जाने लगती है तो कभी जान बूझ कर अपना रुमाल जमीन पर गिरा कर चली जाती। युवक रुमाल उठा लेता है। घर ले जाकर जब वह उसे खोलता है तो उसमें अक्सर उसे एकाध कागज की चिट मिलतीं जिन पर लिखा रहता है:

'निष्ठुर! मुझे कब तक इस तरह तड़पाते रहोगे?'

युवक उसे चारपाई पर लेट कर बार बार पढ़ता है। उसकी आँखों से बेबसी के आँसू छलछला पड़ते हैं! दस बार वह उस पुर्जे को चूम चूम कर पढ़ता है तो ग्यारह बार उसकी आँखों से आँसू बुल्ल बुल्ल करके गिरने लगते हैं! युवक सामने के घर से निकलती हुई नीली रोशनी को टकटकी लगाए देखा करता! हर बार रोने के बाद वह उठता है, शीशे के सामने खड़ा होकर मुँह पर क्रीम और स्नो मलता है और फिर बाहर की तरफ झाँक कर देखता है कि सामने वाले घर की खिड़की अभी तक खुली कि नहीं!

युवक हर बार रमणी से घर पर मिलने की आज्ञा चाहता है किंतु रमणी घर पर नहीं मिलने देना चाहती! हार कर उसे बार बार होटल में ही मिलना पड़ता है; वह भी कुछ ही देर के लिए। बाकी समय में या तो वह दर्शन से या फिर गोलियों से अपना मन बहलाव कर सकता है! गोलियाँ दिन दहाड़े चलाई भी नहीं जा सकतीं जब सड़क पर आने जाने वालों की निगाहें उस पर अनायास ही पड़ें और....?

यह सारी घुटन, बेबसी और उसकी अपनी सीमाएँ कमसिन युवक के भीतर चीख रही हैं। वह बेचैन होकर अपने बाल नोचने

अर्सा

सामने ही कैप्टन चारिया अपना 'बरानकोट' और एक मोटा सा पतलून पहिने खड़े थे। कैप्टन चारिया के पास अब भी कुछ चीजें ऐसी थीं जो याद दिलाती रहती थीं कि वे फौज में थे। 'बरान कोट' इन्हीं चीजों में से एक था। दामोदर को देखते ही वे अपने चिर-परिचित लहजे में 'हो हो' करके हँसे और बोले—

'अरे भाई! नए साल की बधाई! हम तो आपके घर बधाई देने के लिये आए और आप हैं कि अपने ही घर से गायब हैं? मियाँ बीवी में कुछ खटपट हो गई है क्या, जो सुबह सुबह ही दोनों अलग भाग जा रहे हो?' उन्होंने अपना मजाकिया 'टोन' जरा उछाला।

मिसेज हरनाम चारिया रंजिनी के साथ भीतरी बरामदे में बातें कर रही थीं। वकील साहब की आवाज सुन कर इधर आ गईं। दामोदर के प्रणाम का जवाब देते हुई कहने लगीं—

'क्यों भाई! यह क्या बात है? सुना अब तुम लोग दो दो घर ले कर रह रहे हो? क्या पैसे बहुत बढ़ गये हैं? बड़े बड़े पैसे वालों को मैंने देखा है लेकिन ऐसा कहीं नहीं देखा कि पैसे बढ़ जायें तो मियाँ बीवी अलग अलग घर में रहने लग जायें?'

धोरपड़े जानते थे कि यह सवाल आज जरूर पूछा जायगा मगर यह पहिला ही सवाल होगा, यह वह नहीं जानते थे! इस तरह अप्रत्याशित ढंग से यह सवाल आया हुआ देख कर वे कुछ सकपका उठे। वे कुछ कहते इसके पहिले ही श्रीमती रंजिनी ने एक भारतीय पत्नी की भाँति सारी मुसीबत अपने सिर ओढ़ लेने की चेष्टा की।

'नहीं भाभी जी! बात यह है कि आप तो देख ही रही हैं कि यह घर कितना छोटा है। वकील साहब, आज कल कुछ विशेष कार्य कर रहे हैं। वकालत करने के लिये भी काफी पढ़ाई करनी पड़ती है।

उसके लिये घर में इतनी जगह ही नहीं है कि वे अपने सभी कागज पत्र फैला कर एक ही जगह रख सकें। अक्सर वकील साहब के कमरे में काम धाम फैला रहता है। कभी मेरे मिलने वाले भी आ गए तो उनको बड़ी झंझट होती है। खुद इन्हीं के मिलने वाले इनको अक्सर परेशान किया करते हैं। इत्तिफाक से यह सामने वाला घर खाली हुआ तो इन्होंने ले लिया! और कोई खास बात नहीं; बस समझिए भाभी जी, कि अपने छोटे घर का हमने थोड़ा और विस्तार कर लिया है! बीच में सड़क पड़ गई नहीं तो आप को पता भी न चलता कि ये दो मकान हैं! अब इनके मिलनेवाले आते हैं तो मैं कहला देती हूँ कि नहीं हैं। ये सामने वाले घर में बैठे बैठे लिखते पढ़ते रहते हैं।' रंजिनी ने एक ही साँस में सब कुछ कह दिया।

दामोदर घोरपड़े इस सवाल से बेतरह घबड़ा उठे थे। एक तरफ उन्हें मिसेज चारिया की डाँट और दूसरी ओर डाक्टर चारिया के विटामिनों के नुस्खे का भय था। ऐसे भी बराबर मिसेज चारिया के सामने बातें करते वे कुछ घबड़ाते थे। आज का सवाल सुन कर तो उनकी अक्ल बिल्कुल ही गुम हो गई थी। परन्तु जिस कौशल से रंजिनी ने उनकी और उनकी योजना की रक्षा की थी, उसके लिये वकील साहब आँखों ही आँखों में उसे शतशः धन्यवाद दे रहे थे!

कैप्टन चारिया यह सब सुन कर अपनी 'डिजाइन' में फिर हँसे और अपने भरकम हाथों से वकील हसाब की अपेक्षाकृत क्षीण काया पीठ पर एक जोर की थपकी देकर बोले—

'तो ये क्यों नहीं कहते दामोदर! कि 'साइकूलीजी' और 'पैथूलीजी' में अब कुछ करांती शरांती करने का इरादा है जी! भई, हरनाम तुम इन सब बातों को समझ नहीं सकती हो! जवानी का जोश है!

ही बात प्रतिध्वनित करता था, वह यह कि मुक्ति पाने का यही एक स्वर्ण सुयोग है। धीरे धीरे गंगा की लहरों पर 'भगवान् भुवन भास्कर' की किरनें उतर कर नाचनें लगीं। काशी के घाटों की छबि नई सुहागिन की तरह सजल हो उठी।

हो सकता है कि आप कहें—'उहँ, यह क्या बकवास लगा रक्खी है! हमें 'भगवान भुवन भास्कर' से क्या मतलब? आप हमें यह बताइए कि दामोदर और रंजिनी का क्या हुआ? बाकी यह सब कि काशी के घाटों की छबि कैसी होती है, भगवान भुवन भास्कर कैसे उदय होते हैं, कैसे अस्त होते हैं, पक्षी बोलते हैं तो चहचहाहट होती है कि कलरव होता है, यह सब हम भी जानते हैं! हो सकता है आप से अच्छा जानते हों। आप अपना काम कीजिए!' तो इसके जवाब में मैं आपको साफ बता दूँगा कि जनाब! यहाँ मैं उन उपन्यासकारों का हथकंडा इस्तेमाल कर रहा हूँ जिनके पास अपना कहने को कुछ नहीं होता और फिजूल 'भगवान भुवन भास्कर' के पीछे हाथ धोकर पड़े रहते हैं! वे दरअस्ल कलरव सुन कर उतने मगन नहीं होते जितना अपनी कृति का कलेवर बढ़ते देख कर प्रसन्न होते हैं! मगर देखिए, आपके टोकने के पहिले ही मैं समझ गया कि अब आप टोकने ही वाले हैं। आखिर यही सब तो ऊर्ध्व चेतना एवं अवचेतना आदि कहलाती होगी!!

खैर आइए। किस्से पर आइए! इतना सब कुछ कहने सुनने का नतीजा इतना तो आप निकाल ही लीजिए कि सबेरा हो गया था और दामोदर घोरपड़े अपने बिस्तर में पड़े पड़े अलसाई आँखों को बार बार मुलमुलाते हुए जाग रहे थे!

पास पड़ी सिगरेट की डिबिया से एक सिगरेट खींच कर उन्होंने

निकाला। फिर उसे जलाया। लेट कर थोड़ी देर पीते रहे। पास पड़े अखबार को उठा कर पढ़ने लगे। थोड़ी देर बाद उठ बैठे। निवृत्त हुए। छज्जे पर रोज की तरह जाकर हाथ मुह धोया। फिर कुर्सी छज्जे पर निकाल कर धूप की एक किरन का सहारा लेकर, अखबार हाथों में लिये, वहीं बैठ गए। चाय का प्याला अभी तक सामने ही वाले घर से आता था। नौकर चाय बना कर दे जाता था। वे अखबार पर एक उड़ती उड़ती सी निगाह डाल कर सिगरेट के धुएँ के गोल गोल छल्ले बना कर छज्जे के बाहर उड़ा रहे थे। चाय की वे उतनी प्रतीक्षा नहीं कर रहे थे जितना सामने वाले घर की खिड़की के खुलने की! खिड़की अभी तक खुली नहीं थी। हालांकि उस घर के भीतर की कुछ चहल पहल सुनाई पड़ रही थी।

सामने वाले घर से नौकर बाहर निकला। उसके हाथ में चाय का प्याला नहीं था। नौकर इस घर में घुसा भी नहीं। बाहर से ही उसने आवाज लगाई—

'बाबू जी! डाक्टर साहब औ उनके मेम सा'ब आई हैं। बीबी जी चा पीने को बुलाती हैं!'

अक्सर वक्त निकाल कर वकील साहब कैप्टन चारिया के यहां हो आते थे लेकिन इस बीच उनका जाना कुछ कम हो गया था। डाक्टर चारिया तो और भी कम आते जाते थे। मगर आज सुबह सुबह ही उनका, अपनी श्रीमती के साथ आगमन सुन कर दामोदर के कान खड़े हो गए। समझ गये कि अब बिना हरी तरकारी का छिलका खिलाए, डाक्टर चारिया नहीं छोड़ने वाले हैं! नई सिगरेट जलाते हुए घोरपडे, इस घर में ताला बंद कर, उस घर में कई हफ्ते बाद जा पहुँचे।

अपनी इस आदत को वे किसी सीमा तक ले जाने मे संकोच नही करते। जब कभी वे कोई मूर्खता कर बैठते ओर फिर वक्त पड़ने पर उसका बयान करते तो साथ में यह भी बताते थे कि उस मूर्खता के लिये मिसेज चारिया ने रात में उन्हे कितना डाँटा फटकारा और क्या सजा दी! ज्यादातर वे यह दिखलाने की कोशिश करते थे कि वे कुछ नहीं हैं ओर न किसी योग्य थे! जो कुछ भी है वह सब उनकी मिसेज की ही देन है।

दामोदर घोरपड़े भी उनकी इस हरकत से पूरी जानकारी हासिल कर चुके थे। मिसेज चारिया कैप्टन साहब के ऐसे वाक्यों से सदा घबड़ाती थी क्योंकि वे यह नहीं जानती थीं कि किस सीमा पर कैप्टन चारिया रुकेंगे! ऐसी हालत में घोरपडे अक्सर मिसेज चारिया की सहायता बात टाल कर किया करते थे! फोरन बोले—

'नहीं नहीं यह बात नहीं है कैप्टन साहब! हम तो अक्सर आते ही रहते हैं! हां इधर आने की कुछ छुट्टी नहीं मिली! बात यह है हाथ में कई ऐसे 'डिफीकल्ट केस' आ गए कि आने की फुर्सत ही नहीं मिली। एकाध महीने में अब सब काम निबट जायगा। फिर आने जाने की फुर्सत मिल सकेगी। रंजिनी जी तो बराबर आती ही जाती रहती हैं! मैं भी आऊँगा!'

'हाँ हाँ वह क्यों नहीं आएगी। दामोदर जी! क्या यह आपकी तरह है कि काम निकल जाने पर भूल कर भी नहीं झांके?' मिसेज चारिया ने अपनी मुसीबत की परवाह न करके फिर एक धक्का लगा दिया!

इस मानसिक धक्के से वकील साहब कुछ धराशायी जरूर हुए, लेकिन फौरन सम्हल गए। इसका जवाब उन्होंने सिर्फ एक मिनट

की लगातार हँसी से दिया ताकि सब लोग समझ लें कि वे इसे एक हँसी की बहुत बड़ी बात समझ रहे हैं !

दो घंटे बैठकर, शिकायतें उलाहने देकर, हँस बोल कर, चाय पीकर चारिया दम्पति चले गए ।

•

कहते हैं कि एक ही तरह से कहानी सुनने और कहने दोनों में दोष होता है ! इसलिये इस पाप को बचाने में आप थोड़ी देर के लिये मेरी मदद करें !

संध्या की अरुणाई तरु शिखरों पर जा चढ़ी है। सब ओर एक निस्पंदयुत वातावरण छा गया है। ऐसे में, आइए पाठक हम सामने वाले घर में चलें ! अरे यह कौन है ? ठहरिये, यह तो कोई नकाबपोश दिखाई पड़ता है ! कमरे में चारों ओर धुंआ ही धुंआ भरा हुआ है। शायद इसने कमरे में आग लगा दी है ! आइए और नजदीक चलें। घबड़ाइए नहीं, धीरे धीरे आइए। पग चाप की आहट न होने पाए। जरा ध्यान से देखें। हैं, हैं, यह तो बिल्कुल चुपचाप पड़ा हुआ है। शायद इस नकाबपोश की हत्या कर दी गई है ! अरे, और नजदीक आ जाइए ! आइए पाठक ! . . . अरे, यह तो अपने वकील साहब हैं ! अरे, और यह तो नकाब भी नहीं है—यह तो मोटे फ्रेम का गाढ़े काले रंग का धूपी चश्मा है। इसने आग भी नहीं लगाई है। यह तो शायद इनका सिगरेट है जिसका धुंआ कमरे में उड़ उड़ कर

नक्शे

जवानी में ही आदमी नाम शाम सब करना चाहता है। जवानी गई तो जोश गया! फिर वापस नहीं आने का!! मगर एक बात कहूँ! तुम टेढ़ा काम करने जा रहे हो! करैले का छिल्का मिले तो उसे पीस कर रोज सुबह नमक के साथ खाया करो। बड़ी फुरती आएगी!... मगर यह बताओ कि सुबह सुबह तुम्हारे घर का चक्कर लगाया और तुम सुब्बारंजिनी चाय का एक प्याला भी नहीं पूछतीं?'

दामोदर विष्णु घोरपड़े चट बोल उठे—

'रंजिनी, चाय कहाँ ठीक की है?'

रंजिनी ने जवाब दिया—

'चाय तो कब की लगी हुई है। आपका इंतिजार कर रहे थे। फिर यह बात छिड़ गई! आइए, चलिये।'

रंजिनी आगे आगे बढ़ीं। मिसेज चारिया अब भी कुछ चुप चाप खड़ी थीं। उन्हें अब भी दाल में कुछ काला ही नजर आ रहा था।

घोरपड़े ने बात समझते हुए कहा—

'चलिए चलिए भाभी जी! आप किस चक्कर में पड़ी हुई हैं! यह सब आपके मतलब की चीज नहीं है! बस यही समझ लीजिये कि मैंने इस घर में अपने लिये एक 'आपरेशन-थियेटर' बनवाया है। चलिये आप चाय पीजिये!' नर्सों की भाषा में वकील घोरपड़े ने अपनी बात समझाई।

मिसेज हरनाम चारिया अपना बेग सम्हालती हुई चल पड़ीं। हँस कर बोलीं—

'वह तो ठीक है दामोदर जी! लेकिन अपने इस 'आपरेशन-थियेटर' से मरीज को सही सलामत निकाल लाना। जरा समझ बूझ

पर काम करना!' अपनी समझ से उन्होंने घोरपड़े के मनोविज्ञान पर एक गहरा व्यंग किया।

चाय की मेज पर बैठते बैठते उन चारों की हँसी से सारा घर गूँजने लगा। हर बात खत्म करने पर डाक्टर चारिया अपने प्याले में 'थोड़ी और' चीनी डालने की माँग करते रहे और वकील साहब उनके बगल में बैठे हुए चम्मच से चीनी की 'आहुति' डालते रहे। एकाएक कैप्टन चारिया ने वकील साहब से शिकायत की—

'यार! क्या बात हो गई है? अब तो तुम लोग मुद्दतों से हमारी तरफ नहीं आए! कहाँ पहिले तुमने अस्पताल की नींव खोद डाली थी और कहाँ अब आप दूज के चांद हो रहे हैं? वकील साहब! आपको याद है कि आप औरतों के नाम से भड़कते थे और अब जनाब अब चारों तरफ आपको औरतें ही औरतें दिखाई पड़ती हैं— और सब कुछ आप भूल गए! अजी मेरी भी शादी हुई थी, लेकिन मैंने कहीं आना जाना निकलना बैठना तो कभी बंद नहीं किया। पूछो हरनाम से! अरे मुहब्बत का धंधा करने के लिये परमात्मा ने रात भर का टाइम क्या कम दे रक्खा है? क्यों हरनाम?'

मिसेज हरनाम चारिया इसे सुनकर शरमा गई। जितने टमाटर वे रोज खाती थीं वे सब के सब उनके गाल में चमकने लगे। कैप्टन चारिया ने मजाक तो घोरपड़े से किया था लेकिन अपनी बेहूदी आदत के मुताबिक मिसेज हरनाम चारिया को भी उसमें सान लिया था। वे जब कभी ऐसा मजाक करते या किसी ऐसी बात का प्रसंग चलाते तो किसी न किसी तरह घुमा फिरा कर, उसमें मिसेज हरनाम चारिया का नाम जरूर घुसेड़ लेते थे। बिना ऐसा किये, वे यही समझते थे कि उन्होंने अपना पति कर्त्तव्य पूरा नहीं किया है।

ए० हो कर उपमंत्रित्व की कल्पना साकार होने लगती है। वे छत पर निकल कर घूमने लगे।

'मिल गया। राज़ तो मिल गया।' सिगरेट की डिब्बी पर अँगूठे और तर्जनी से ठुनकी मारते हुए वे बुदबुदाए—'लेकिन अब यह खलनायक कहाँ से लाऊँ?'

मनोविज्ञानी दामोदर ने खलनायकों का मनोविश्लेषण करना शुरू किया। एक जो जवान खलनायक होते हैं जो अपनी तरफ से हीरोइन पर मरते रहते हैं, अपने वैभव के बल पर हीरोइन को अँगूठी वगैरह पहिना कर माँ बाप को फँसा कर उन्हीं से शादी कराने का वचन ले लेते हैं। इन्हीं खलनायकों से बेचारा नायक लड़ता है और अंत में अपनी शक्ति और साहस के बल पर जीतता है। दूसरे टाइप के खलनायक, ऐसी रोमांस कथा में वे माँ बाप होते हैं जो अपने खानदान के नाम पर, दहेज के नाम पर, और न जाने किन किन पिटी पिटाई चीजों के नाम पर अपने लड़के की शादी अमीर घराने में करने की सोचते हैं और हर तरह यह चाहते हैं कि लड़के का बस भला ही भला हो! पहिले ढंग के खलनायकों के बारे में सोचते हुए वकील साहब ने अपने कई मित्रों के बारे में ख्याल किया। फिर उनके तर्क ने उत्तर दिया कि ओव्वल तो किसी भी मित्र से यह सब बता कर उन्हें सही ढंग से पूरी योजना समझा ले जाना बहुत कठिन है। बहुत संभव था कि वे कोई तमाशा खड़ा कर देते या वे सारे मानसिक अनुशासन को भूल कर यह नाटक मानने में इन्कार ही कर दें और अपनी 'प्रेयसी' को प्रेयसी ही मान बैठें!! इस हद तक किसी भी मित्र को पास खींचने में वकील साहब को खतरे की छाया दिखाई पड़ती थी। बहुत सोच विचार करने के बाद

उन्होंने दूसरे टाइप के खलनायकों में अपनी आस्था जमाई। इस किस्म के नायक और चाहे जो करें लेकिन 'प्रेयसी' उनकी निगाहों से तो बची रहती है और वे पुकारते वक्त उसे 'बेटी' ही कह कर पुकारते हैं। दूसरे प्राय: ऐसे खलनायक कहानी का अंत आते आते अपनी बेवकूफी समझ जाते हैं और जान जाते हैं कि उनका लड़का जो कुछ भी कह राह था वही ठीक था। तीसरे, यह खलनायक अंत में अपनी उसी बहू के हाथों से खाना खाते हुए और परम प्रसन्न होते हुए दिखाई पड़ते हैं जिसे वे कुछ दिनों पहिले गालियाँ दिया करते थे। कुछ खलनायक अपवाद जरूर होते हैं जो अपनी ही अक्ल पर विश्वास करके लड़के को एक बार घर से बाहर निकाल देने में भी नहीं चूकते और साथ-साथ अपनी जायदाद से भी वंचित कर जाते हैं!! किंतु ऐसे खलनायक भी मरते वक्त अपने बेटे को बुलाकर एक हाथ से वसीयत नामा उसके हाथ में पकड़ाते हैं और लड़की बुलवाकर दूसरे हाथ से लड़के के हाथ में हाथ पकड़वा देते हैं। फिर वे कहते हैं 'बेटी मुझे माफ करना!' फिर वे मर जाते हैं। फिर लोग रोते हैं। फिर शादी हो जाती है! इसी प्रकार के खलनायक से उनका कार्य सिद्ध हो सकता था!

सिगरेट की नयी डिबिया का नम्बर आ गया। अब समस्या और भी कठिन हो गई थी। अब समाधान का समाधान ढूंढना था। सिगरेट जला कर उन्होंने फिर अपने दिमाग को चूसना प्रारंभ किया। घोरपड़े के माँ बाप पहिले ही बिदा ले चुके थे। होते भी तो क्या करते, इस बारे में दामोदर को पूरा विश्वास नहीं था। अब खलनायक किराए पर लेना होगा। सबसे पहिले स्वाभाविक ढंग से कैप्टन चारिया और मिसेज चारिया का नाम सामने आया। पर उनका ध्यान आते

भर गया है। आइए पाठक कान लगा कर सुनें! हूं! इनकी तो साँस भी चल रही है। मरे नहीं हैं! तो फिर क्या कर रहे हैं? आँखें भी खुली हैं! सोच रहे हैं शायद! लेकिन यह कैसे पता चले कि यह क्या सोच रहे हैं? इसके लिये तो बस एक ही तरकीब है! आइए, आइए पाठक! हम आप इनके दिमाग में घुस चलें?... घुस गए? बस अब आप यह जान लीजिये कि वे क्या सोच रहे हैं?

ठीक है। अब आप कहानी आगे सुनिये।

कमरे और छज्जे के बीच वाले दरवाजे के पास आरम कुर्सी डाले हुए दामोदर विष्णु घोरपड़े बड़ी चिंता में थे। आज वे सोच रहे थे कि ज्यों ज्यों वे अपने मृतप्राय रोमांस को जीवित करने के लिये अपने ऊपर बंधन लगाते हैं त्यों त्यों वह अंदर से खोखले हुए जा रहे हैं। उन्हें लग रहा था कि उनकी चेतना अब भी पूर्ववत् ही काम कर रही है। आज सुबह ही सुबह जब कैप्टन चारिया और मिसेज चारिया आए हुए थे तब कितनी सरलता के साथ उनकी चेतना म यह स्मृति जाग उठी थी कि रंजिनी बिल्कुल उनकी पत्नी है और वे उसके पति हैं! उन्हें लग रहा था कि उनका उपचेतन जो कुछ भी संचय करके रख रहा था वह सब समय पाकर स्मृति के रूप में उद्भूत हो रहा था। यही हटाने के लिये घोरपड़े व्याकुल थे। वही हट नहीं रहा था। बिना यह स्मृति हटे उन्हें अपने रोमांस से वांछित फल नहीं मिल सकता था, यह भी वे जानते थे।

एक डिबिया कैप्स्टन सिगरेट वह खत्म कर चुके थे। उठ कर तकिये के नीचे से दूसरी निकाली। आकर फिर पूर्ववत् कुर्सी पर बैठ गए। इस बार उनके दिमाग में रोमांस और पशु प्रवृत्ति की बात उठी। मानव जीवन में दूसरे सामने परोसी हुई थाली छीन लेने की जो अदम्य पशु

प्रवृत्ति रहती है वह भी रोमांस में प्रायः सशक्त ढंग से आती है तभी उसके अन्य दूसरे तत्वों का पूर्ण विकास संभव हो सकता है। वे ध्यान-मग्न होकर अपनी आत्मा की आवाज सुनने की कोशिश करने लगे। उनका दिमाग घूम रहा था। समस्या सामने थी लेकिन उसका समाधान नहीं सूझ रहा था। जो कुछ दामोदर कर रहे थे खुद उन्हें भी उसका अंत नहीं पता था। फिर भी आज वे अपनी आत्मा से सिर्फ अगला कदम जानना चाहते थे। वे सोच रहे थे कि यदि उन्होंने भूलने की प्रक्रिया को इतना आसान बना दिया तो हरेक पति-पत्नी पुनः 'सुख के सागर में तिरते' दिखाई पड़ेंगे। घोरपड़े ने अपनी आत्मा को थोड़ा और कसा। सिगरेट की दूसरी डिबिया भी चें बोल गई थी। अब सिर्फ एक सिगरेट बाकी रह गई थी। सहसा उनकी निगाह सामने पड़ी हुई एक फिल्मी पत्रिका पर पड़ी। उसके मुख पृष्ठ पर एक खलनायक का चित्र था। उधर चित्र पर निगाह पड़ी और इधर उनकी आत्मा बोल उठी—

'तुम्हारे इस रोमांस में, कोई भी खलनायक नहीं है। खलनायक ही हर प्यार को सशक्त करता है। वही रोमांस की रीढ़ है! उससे नायक और नायिका पर जो विपत्ति पड़ती है, वह उन्हें प्रेम करने की अपूर्व शक्ति देती है। अपने प्रेम को सुदृढ़ करने के लिये हर प्रेमी को एक 'विलेन' या खलनायक खोज निकालना चाहिये!'

आत्मावादी मनोवैज्ञानिक वकील साहब, आत्मा की यह आवाज अपने मन में गूंजती हुई सुन कर उछल पड़े। खारी सागर को मथते मथते एक मोती उनके हाथ लगा था। इतना पाते ही भविष्य उनके सामने उसी तरह मूर्तिमान हो उठा जिस तरह एक बार एम० एल०

ही घोरपड़े का दिल बैठने लग गया। सहायता की बात तो दूर, यदि कॉटन साहब को यह पता चला तो हरी तरकारियों के एक झाबे के अलावा और कुछ हासिल नहीं होगा, यह दामोदर सोच रहे थे। आज सुबह ही उनका जो रुख था, उसे देखते हुए चारिया दम्पति खल-नायकों का पार्ट कतई नहीं करेंगे, यह तै था!

फिर आखिर कौन हो?

नागपूर में घोरपड़े के एक दूर केचाचा तारघर में तारबाबू थे। उन्हें कुछ दिनों के लिये काशीवास के बहाने बुलाया जा सकता है। घोरपड़े उन्हें उसी क्षण पत्र लिखने बैठ गये। थोड़ी दूर खत लिख कर वे ठहर गए। उन्हें बड़ी निराशा हुई। जब वे ही उन्हें बुला रहे थे तो भला उनके चाचा किस तरह उनके खलनायक का पार्ट कर सकते थे? समझाने से मनोविज्ञान का इतना सूक्ष्म विश्लेपण और यह तजुरबा उनकी मोटी बुद्धि में नहीं घुस सकता था! तब फिर बुलाने से ही क्या लाभ? यही सोचकर उन्होंने खत लिखना बंद कर दिया' इससे उल्टे विघ्न ही पड़ सकता था और उनकी साधना टूट सकती थी।

कई नाम सामने आए। सब की कमियाँ सामने आती रही। नाम ऊपर उठते रहे और वकील साहब उन्हें सेकेंड की सुई की तरह खट खट पीछे छोड़ते चले गये। वे ऐसा नाम चाहते थे जो उनकी योजना को सफलता की ओर ले जाय। वे कुछ असाधारण ढंग से सोच रहे थे!

इतना दिमागी समुद्र-मंथन करने के बाद उनके चेहरे पर मुस्करा-हट आई। वे कपड़े पहिनने लगे। थोड़ी देर में वे बाजार की तरफ बढ़ गए।

बाजार पहुँच कर वे उस दूकान पर रुके जहाँ नाटक के लिए तरह

तरह की रंग बिरंगी दाढ़ी, जटा, मूँछें और कपड़े मिलते थे। छाँट-कर वकील साहब ने टैगोर-स्टाइल की लम्बी शुभ्रधवल लहराती हुई मूँछदार दाढ़ी निकाली। साथ में एक गेरुवे रंग की जटा भी खरीदी। नाटक में जिस तरह की दाढ़ी और जटा दुर्वासा ऋषि लगाए घूमते हैं, यह ठीक उसी तरह की थी।

दामोदर घर लौट आए। कमरे में कद्दे-आदम शीशे के सामने उन्होंने दाढ़ी मूँछ और जटा लगा कर देखा। वे खिल उठे। उनका चेहरा बिल्कुल अपने पिता के चेहरे से मिल गया था। अपने मौलिक मस्तिष्क से वकील साहब ने समस्या का समाधान खोज निकाला था। उन्होंने तै कर लिया था कि वे स्वयं ही अपनी इस रोमांस कथा में खलनायक का पार्ट करेंगे। जिस मानसिक-अनुशासन के द्वारा वे यह भूलने में समर्थ हो जाते थे कि वे पति नहीं बल्कि प्रेमी हैं, उसी तरह उन्होंने सोचा कि वे कुछ देर के लिए दामोदर विष्णु घोरपड़े को भूल कर विष्णु पांडुरंग घोरपड़े हो जाया करेंगे!

०

सात

।
०

अगर कोई हमेशा खुश रहने की कोशिश करता रहे तो दूसरे लोगों से देखा नहीं जाता, ऐसा सुना गया है। दूसरे की पिटाई कुटाई, छंटाई, निंदा, प्रपंच सब कुछ देखा सुना जा सकता है—एक सिर्फ नहीं देखते बनता तो वह है दूसरे का सुख! अगर चार आदमियों में से तीन को शक पड़ जाय कि उनमें से चौथा सुखी है तो फिर बाकी तीनों का यह पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि वे यह ढूँढें कि उसके हाथ ऐसा कौन सा पारस पत्थर लगा है जिससे वह सुखी होने का सपना देख रहा है। जैसे ही यह पता लग जाय तैसे ही उन्हें अपनी समस्त विद्या से उस पारस पत्थर को सिल बटखरा साबित करने से नहीं चूकना चाहिए। यहीं अक्ल की असली परख होती है। जो अक्ल के कच्चे और खोपड़ी के औंधे होते हैं वे इन 'ठगों' के बहकावे में आकर बछड़े को गधा का बच्चा समझ कर फेंक देंगे। उस समय उन तीन ठगों में से एक उसे फिर ले भागता है। अब शेष तीनों का कर्तव्य हो जाता है कि वे हाथ धोकर उसके पीछे पड़ें और उसे मूर्ख प्रमाणित करें! चक्र ऐसे ही चलता रहता है।

उस दिन कचहरी से जब वकील साहब लौटे तो बहुत अनमने से दिखाई पड़ रहे थे। बात वही थी। उनके साथ काम करने वाले वकील यूँ भी घोरपड़े के मनोविज्ञान से भड़कते थे! उस दिन बार-एसोसिएशन में यह चर्चा चल रही थी कि सरकार उन्हें इसी काम

के लिये इटली भेज रही है। न सिर्फ इतना बल्कि दिल्ली से आर्डर चल चुका है और अब आने ही वाला है! उड़ानेवालों ने यहाँ तक बात उड़ाई कि खुद घोरपड़े ने ही इटली का नाम सरकार को सुझाया है। मजाक बनाने के पीछे जो खास चीज मनोविज्ञानी घोरपड़े मानते थे वह थी जलन की, ईर्ष्या की, डाह की प्रवृत्ति!! उस दिन खाली वक्त में वकील साहब के तथाकथित दोस्तों ने उनका दो घंटे तक मजाक बनाया। हल्के फुल्के मजाक के अलावा घोरपड़े मजाक से दूर ही रहते थे! वे कहते थे कि इस तरह के मजाक कहने सुनने से आदमी के अवचेतन पर बुरा प्रभाव पड़ता है और उसमें पशु-प्रवृत्ति के अवांछित अंश जागते हैं! मजाक ही मजाक में उन्होंने जब यह सुना कि दिल्ली से आने वाले हुक्मनामे में उनकी बीबी ने जोर लगाया है, तो उनकी कँपकँपी छूट गई! एक ही दो बार में वह चीं बोल गए। संजीदा हो गए। जिस मौन को वे विरोध के रूप में रखना चाह रहे थे वह मित्रों ने 'हवास-गुम' के रूप में लिया। नतीजा यह हुआ कि घर आते आते उनका दिमाग सुन्न पड़ गया था और वे एकदम अनमने हो गए थे।

घर आकर वे चुपचाप चारपाई पर पड़ गये। सैकड़ों छूटे हुए अनार जैसे मजाकिया वाक्य उन्हें परेशान कर रहे थे। नशा उतरने पर जितनी तकलीफ नहीं होती, उससे कहीं ज्यादा तकलीफ मजाक हो जाने और उसे झेल जाने के बाद होती है। रग रग टूटने लगती है। बड़ा 'डिप्रेशन' आ जाता है। सारी दुनियाँ बेकार और नीरस दिखाई पड़ने लगती है। जब तक उसका मारक न समझ में आ जाय तब तक वह काँटे की तरह करकता रहता है। चारपाई पर लेटे ही लेटे उन्होंने हाथ बढ़ाकर खिड़की खोल दी। जब वे आए थे तब

सामनेवाले घर की खिड़की बंद थी लेकिन अभी अभी वह खुल गई थी। सहसा उन्हें याद आया कि उसी दिन उस लड़की के साथ उन्हें 'सेकेंड-शो' में एक सिनेमा देखने जाना है। इतना याद आते ही वे लपक कर बिस्तर पर से उठ बैठे। दिन भर की घटना उनके दिमाग से उतर कर उनके उपचेतन में चली गई!!

झुट पुटा काफी हो चला था। उन्होंने कमरे की बत्ती जलाकर उजाला किया। एकाएक बिजली की तरह एक साथी का किया हुआ मजाक उनके सामने कौंध गया! मगर उन्होंने अपने मन पर संयम कर लिया था। उन्होंने सोचा कि जिस विराट व्यक्तित्व के निर्माण की बात वे सोच रहे हैं वह इस तरह की छोटी छोटी बातों पर ध्यान देने से नहीं पूरी हो सकती है। यह सारे विरोधी तत्व तो सामने आयेंगे ही! इन्हीं पर तो बाहरी जगत में जय पानी होगी! वे रात के कार्यक्रम को पूरा करने के लिये तैयार होने लगे।

बिजली के 'हीटर' पर कटोरी में पानी गरमाया। हजामत बनाने का सामान ला रक्खा। शाम वाली हजामत जल्दी से बनाई। तौलिये से अपने गाल पोंछे फिर एक नेबू को दो टुकड़ों में काटकर एक एक टुकड़ा एक एक गाल पर रगड़ना शुरू किया। नेबू से गाल रगड़ना उन्हें डाक्टर चारिया ने बताया था। नेबू रगड़ने के बाद 'वैनिशिंग क्रीम' उँगलियों में भर कर उन्होंने हल्के हाथों से गालों पर थपकियाँ देना चालू किया। थोड़ी देर में उसे भी उन्होंने चेहरे के साथ मिला दिया। इसके बाद तौलिये से उन्होंने अपना मुंह थप-थपाया गोया क्रीम को उन्होंने और कस कर चिपका दिया। अपने बालों को वकील साहब ने किसी खास दवा के प्रयोग से बादामी बनवा लिये थे! उन्हें अक्सर धोकर वे बिना तेल लगाए ही छोड़

निशावे

देते थे! इससे उनके बादामी रंग के बाल झटका खाते ही बिखर उठते थे जिसे वे बात करते करते बड़ी अदा के साथ धीरे से सँवार दिया करते थे। देखने वालों को लगता था कि ये बाल अक्सर यूँ ही गिर पड़ते होंगे और वकील साहब उन्हें यूँ ही उठा दिया करते होंगे किंतु उनमें से एक भी यह नहीं जानता था दामोदर घोरपड़े बालों को कैसे उस खास स्थिति में लाते थे कि वे उस समय वैसा ही गिरें जैसा वे चाहते हों, और फिर वे अपनी 'सेट' अदा में सिर को जरा तिरछे झटका देते हुए उन्हें ऊपर उठा कर फेंक दें। इस वक्त भी उन्होंने अपने बालों में हल्का सा 'शैम्पू' किया और फिर बिना तेल लगाए वैसे ही छोड़ दिया ताकि वे लटें अपने समय पर गिरें और फिर यथा समय उठ जायें!

चेहरे की सारी तैयारी कर चुकने के बाद वकील साहब ने अपने कपड़े निकाले। शाम के रंग से मैच करता हुआ उन्होंने एक सूट निकाला। खुले कॉलर का कोट वकील साहब कम पहिनते थे। अक्सर वे उसके साथ रेशमी मफलर से गला ढँका करते थे। सूट पहिन कर शीशे के सामने खड़े हुए। देखा। कुछ जमा नहीं। फिर एक बंद कॉलर का कोट निकाला। शीशे के सामने फिर खड़े हुए। इस बार और भी भद्दा लगा। बुजुर्गों वाला यह बंद कॉलर का कोट पहिन कर रोमांस करने के लिये जाना, यह विचार मात्र उसे उतरवाने के लिए मजबूर करने लगा। हार कर वह कोट भी उन्होंने उतार दिया। अंत में उन्होंने एक नई सिलवाई हुई शेरवानी निकाली। सुरमई रंग की यह शेरवानी अपनी तबीयत का रंग था! ढीली मोहरी का एक पैजामा और सुरमई रंग की शेरवानी पहन कर उनके मन को कुछ संतोष हुआ।

जो जाड़े की शाम थी, वह देखते देखते जाड़े की रात हो गई। सर्दी काफी थी। नया साल इस बार भयानक सर्दी लेकर आया था। घोरपड़े तैयार हो रहे थे कि आठ बज गया। अलर्म घड़ी बोलने लगी। दामोदर जब कभी अपने रोमांस संबंधी कार्यक्रम पर जाया करते थे तो पूर्व सूचना देने के लिए घड़ी में हमेशा अलर्म लगा दिया करते थे! इससे चूक होने की संभावना बहुत कम रहती थी। वे तैयार होकर निकलने ही वाले थे कि उनके दिमाग में विचारों की एक बिजली चमकी!

वे कमरे के कोने तक गए। इलमारी में से दाढ़ी मूँछ और जटा निकाल कर लगाई ओर फिर शीशे के सामने आ गये। अपनी आवाज को भरसक भारी और बेहूदा बनाकर डाटते हुए उन्होंने पूछा—

'ऐसी सर्दी में इस बेवक्त कहाँ जाने की सूझी है दामोदर?

उसके बाद एक क्षण का मौन। अर्थात् दामोदर चुप है!

'मैं पूछ रहा हूँ, आखिर कहाँ जा रहे हो? क्या मुह में जबान नहीं है?'

तब उन्होंने दाढ़ी उतारी और धीमे स्वरों में कहा—

'कुछ नहीं पिता जी! जरा....'

इसी बीच दाढ़ी लगा कर वे फिर गरजे—

'जरा क्या होता है? ऐसी सर्दी में जान फालतू है क्या?'

इसके बाद वे दाढ़ी उतार कर चट बोले—जैसे उनको जवाब सूझ गया—

'कुछ नहीं पिता जी, मेरे एक मित्र दिल्ली से कलकत्ते आ रहे हैं।

उनका तार आया है। उन्हीं से मिलने के लिये स्टेशन जाना है।... मिल कर वापस आ जाऊँगा।'

यह सुनकर वह दाढ़ी मूँछ लगाकर, कुछ कमर झुका कर कमरे के उसी कोने तक खखारते हुए गए और बड़बड़ाए—

'अजीब सनक है आज कल के लौंडों की! सरदी इतनी पड़ रही है..फिर भी बाहर घूमे बिना जान निकली जा रही है! हुँ! हुँ हुँ!!'

पूरी उपेछा के साथ हुँ हुँ! की ध्वनि करते हुए उन्होंने किनारे की खूँटी पर वह दाढ़ी मूँछ और जटा टाँग दी। फिर एक मुस्कान फेंकते हुए आहिस्ता से दरवाजा बंद करके वे बाहर निकल गये कि किसी को कानोकान खबर न हो!

इस नए प्रोग्राम से और नए पात्र के आने से घोरपड़े को कुछ नया रस आने लगा। कभी जब लौटते और ज्यदा देर हो गई होती और दाढ़ी मूँछजवाब तलब करती तो वे 'एक्सीडेंट', 'लेट',आदि तमाम बहाने बता देते या कभी कभी शीशे के सामने आँख नीची करके पूरी डाट सुन लेते थे। इस प्रकार वे अपना खोया हुआ मानसिक संतुलन फिर से प्राप्त कर रहे थे। सामने वाली खिड़की में से 'मिस' सुब्बारंजिनी अब भी सहयोग देती रहीं।

दाढ़ी मूँछ अपने उत्तरदायित्व के प्रति पूर्ण रूप से सजग थी। वह देख रही थी कि उसका लड़का इश्क के चक्कर में पड़ कर बेकार होता जा रहा है! धीरे धीरे दाढ़ी मूँछ ने यह पता लगाया कि इस

सारे मामले में सामने वाले घर की लड़की का बहुत बड़ा हाथ था। दाढ़ी मूँछ ने यह सारी बातें उसी मुहल्ले के एक बनिये से पता की। आखिर उसने इसका शमन करने की बात सोची।

शाम को पाँच बजे के आस पास गेरुवा वस्त्र पहिने हाथ में कमंडल और चिमटा लिये, दाढ़ी मूँछ जटाधारी एक बाबा जी ने सुब्बारंजिनी के दरवाजे पर दस्तक दी।

'हर हर शंकर! बम भोला! माता! कुछ भिक्षा दे तेरा कल्याण होगा!'

थोड़ी देर बराबर बाबा जी के चिल्लाने के फलस्वरूप दरवाजा खोल कर सुब्बारंजिनी बाहर निकलीं। बोलीं—

'कौन है?'

बाबा जी आगे बढ़ कर बोले—

'बम शंकर! बेटी! तू इतनी उदास क्यों है? तेरे ललाट की रेखाएँ बता रही हैं कि तू तो बड़ी भाग्यवान है! परन्तु फिर भी तेरे मुख पर प्रसन्नता नहीं है।...क्या तुझे पति-सुख नहीं है?'

बाबा के इस कदर सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण को देख कर रंजिनी चौंकी।

'नहीं बाबा नहीं! बात कुछ नहीं है! ऐसे ही...'

तब तक बाबा जी फिर बोले—

'नहीं बेटी! मैं अपने योग से देख रहा हूँ। तेरा पति जीवित है किंतु उसे कुछ मानसिक रोग है। तुझे संतान न होने का दुख है?

चिंता न कर बेटी। समय पाकर सब दुख दूर हो जायगा। ले यह भभूत! शकर जी का नाम लेकर खा ले। सब चिंता दूर हो जायगी।'

बाबा जी ने एक चुटकी भभूत की निकाल कर दी और दाढ़ी में हाथ पोंछ लिया। दाढ़ी पर हाथ फेरते ही उन्हें अपना उद्देश्य याद आ गया।

'बेटी! तू भी उसी मानसिक रोग में ग्रस्त हो रही है। मेरी बात यदि तू माने तो यह स्थल छोड़ कर तू कहीं और रह! तेरा रोग दोख सब शंकर भगवान दूर कर देंगे। तुझे सच्चा सुख मिलेगा और भगवान भोलानाथ ज्ञान देंगे। मैं अपने योग से देख रहा हूँ कि तेरा यह संकट दूर हो जायगा।'

रंजिनी इतनी ही देर में बाबा जी के योग से बहुत प्रभावित हो गई थीं। दो सेर आटा लाकर बाबा जी की झोली में डाल दिया। दरवाजा बंद हो गया। बाबा जी की अपूर्व वेशभूषा देख कर मुहल्ले के लड़के आस पास इकट् ा हो गये थे। एकाएक दाढ़ी बाँधने वाला तार टूट गया और बाबा जी की दाढ़ी गिर पड़ी। लड़कों ने एकदम यह अजूबा देख कर जोरों का हल्ला मचाया। बाबा जी गिरी हुई दाढ़ी को समेटते हुए दूसरी तरफ भागे। लड़कों ने पीछा किया। आस पास के लोग और दूकानदार 'लकड़ सुंघवा आया, पकड़ो पकड़ो जाने न पाए' का शोर मचाते हुए बाबा जी के पीछे दौड़े। मुहल्ले के कुत्ते भी भौं भौं कर पीछे लगे। बाबा जी को दाँतों पसीना आ गया। हर ओर भागते हुए, बीसियोंजानी अन जानी गलियों का चक्कर काट कर किसी तरह गजानन चौधरी के घर पहुँचे।

गजानन चौधरी ने वकील साहब को इस वेश में कभी देखा नहीं था। थोड़ी देर तक पहिचाना नहीं इसलिये बड़ी बेरुखी से पूछा—

'कहिये ! किसे चाहते हैं ?'

जटा दाढ़ी उतारते हुए घोरपड़े बोले––

'अरे यार कुछ नहीं ! जरा एक फैन्सी ड्रेस का आज रिहर्सल किया तो बड़ी झंझट में पड़ गया। लाओ एक धोती कुर्ता दो तो पहिन कर घर लौटूं।'

गजानन चौधरी की उत्सुकता जागी । किसी तरह वकील साहब ने अपनी वकालती विद्या का सहारा लिया और इधर उधर की बातें बता कर उनकी जिज्ञासा शांत की। गजानन चौधरी ने उन्हें धोती कुर्ता तो दे दिया लेकिन उनके मन में एक अजीब सा कौतूहल अब भी नाच रहा था ! आखिर वकील साहब ने यह गेरुवा बाना क्यों पहिना ? इसमें कोई मनोवैज्ञानिक रहस्य जरूर होगा लेकिन वह क्या है, यह उनकी समझ में लाख कोशिश करने पर भी नहीं आया !

बाबा जी का सारा 'मेकअप' का सामान एक गठरी में बाँध, गजानन चौधरी का कुर्ता धोती पहिन, घोरपड़े अपनी इस हरकत के बारे में सोचते हुए घर लौटे ! घर पहुँचते पहुँचते मुहल्ले के तमाम परिचितों ने उनसे कहा––वकील साहब ! आप कहाँ चले गए थे ? आज तो इस मुहल्ले में एक लकड़ गुंघा आया था ? बड़ी मुसीबत है ! अब तो बच्चों को खुला छोड़ना मुश्किल है ! आप कम से कम इस बात की खबर कोतवाल साहब को तो कर दीजिये ! पता नहीं किधर से वह भाग निकला। दौड़ाया तो हम लोगों ने बहुत था मगर किस्मत का तेज था ! निकल गया।'

घोरपड़े जी कुछ घबड़ाए। कोतवाल तक खबर जायगी तो बवाल होगा। उन्होंने आश्वासन देते हुए कहा––

'आप लोग फिक्र न कीजिये। मैं सब कह सुन दूँगा। आप इसकी चर्चा इधर उधर मत कीजिये। मैं ठीक कर दूँगा।'

घर आए और कोने की खूँटी पर दाढ़ी मूँछ टाँग दी।

•

दामोदर घोरपड़े को अपने रोमांसयुत तजुरबे में पूरी आस्था थी। वे समझ रहे थे कि उसका निश्चित ही प्रभाव होगा। वे रोज अपने सूट और अपनी शेरवानियाँ बदलते थे। दिन में दो बार हजा-मत बनाते थे। तरह तरह के जूते बनवाते थे और कमर कस कर इश्क लड़ाते थे। वे अपनी तरफ से मस्त हो जाने की पूरी कोशिश कर रहे थे।

पिछले तीन चार दिनों से मुहल्ले में उस 'लकड़ सुंघे' वाली घटना को लेकर काफी तहलका सा मचा हुआ था। घर की औरतों ने अपने बच्चों को शाम होते ही घर के बाहर निकलने से मना कर रक्खा था। आस पास के लोग उसी लकड़ सुंघे की चर्चा करते। कोई कहता कि ये लकड़ सुंघे बच्चों को पकड़ ले जाते हैं और उन्हें तेल के जलते कड़ाह पर उल्टा टाँग देते हैं। बच्चों के सिर में फिर छेद कर देते हैं जिससे बच्चों का दिमाग तेल में गिर पड़ता है। उसी की दवा बनाते हैं। कोई कहता कि लकड़ सुंघे बच्चों को पकड़ कर ले जाते हैं और उन्हें बेच देते हैं। वकील साहब के कान में ज्यों ज्यों ये बातें आतीं त्यों त्यों वे बहुत घबड़ाते!

•

सात

उस दिन सुबह छः सात बजों ही उनकी आँख खुल गई। उठे और उठकर शहर मे बाहर की तरफ घूमने चल दिये। इस 'लकड़ सुंघवा' अफवाह को वे दबाना चाह रहे थे मगर उनकी भरसक कोशिश के बावजूद भी वह दब नहीं रही थी। यही सोचते सोचते वे पेट्रोल की टंकी तक पहुँच गए। सामने 'मोविल आयल' का एक बड़ा सा इश्तहार लगा हुआ था। एकाएक उनके मनोवैज्ञानिक दिमाग को कस कर झटका लगा। उन्हें लगा कि वे खुद आदमी नहीं है। वे मशीन हैं। ऐसी मशीन जिसमें समय समय पर प्रेम करने के लिये विभिन्न तरह का पेट्रोल डालना पड़ता है। सिर्फ पेट्रोल से ही काम नहीं चलता, उन्हें मानसिक-अनुशासन का मोबिल आयल भी डालना पड़ता है ताकि गाड़ी चिकनाहट से चले ! उन्हें सारा व्यवहार, नीरस, वाहियात और चमत्कार-हीन लगने लगा ! मनोवैज्ञानिक के सामने एक बड़ा भारी सवाल आ गया! आदमी या मशीन? आदमी का दिमाग मशीन बनने की तरफ!! घोरपड़े तो मानव मन और उसकी प्रवृत्तियों की बात उठाते थे ! भला आदमी का मशीन हो जाना वे कैसे सह सकते थे ! अगर मानव मन सिर्फ मशीन होकर रह जायगा तो उनका उद्देश्य ही हार जायगा!!

घोरपड़े को यह सब सोचते सोचते तैश आ गया। वे वापस लौट पड़े। अबकी उनके कदम तेज पड़ रहे थे। वे तैश में थे। उनको कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। उनके कानों में यही भनभनाहट आ रही थी—'तुम मशीन हो ! तुमने रोमांस को मशीन बना दिया !' मुहल्ले में वे वापस आ गये। सहसा अपने ही द्वारा लगाए गए सारे बंधनों को वे तोड़ फोड़ कर सुब्बारंजिनी के घर में घुस गए और पुकारने लगे—

'रंजिनी ! रंजिनी !!'

ऊपर के कमरे में बैठी हुई रंजिनी बहुत दिनों बाद अपने आंगन में यह आवाज सुन कर चकित हो गईं ! जब से यह दौर शुरू हुआ था तब से वह अधिकतर ऊपर के ही कमरे में रहती थीं और सामने वाली खिड़की से मन बहलाया करती थीं ! वह मुस्कराती हुई कमरे के बाहर निकलीं और धीरे धीरे जीने से नीचे उतरने लगीं।

'क्या हुआ ? क्या बात है ? आज कैसे भूल पड़े घोरपड़े जी ?'

'घोरपड़े जी की कुछ नहीं ! मैं तुमसे एक बात पूछने आया हूँ।'

'वह क्या ?'

'बात सुनो। बीच में मत काटो। मैं पूछना चाहता हूँ कि आखिर यह हम और तुम जो इतनी बड़ी साधना कर रहे हैं, अपने शरीर को गला रहे हैं, यह सब क्या इसीलिये कि आदमी मशीन बन जाय ! क्या हम और तुम रोमांस करने वाली मशीन हैं ? क्या इसी के लिये यह सब किया गया है ?'

रंजिनी ऊपर से ही सिगरेट की डिबिया लेकर उतरी थीं। घोरपड़े की तरफ बढ़ाते हुए बोलीं—

'लीजिये। बैठिए। अभी चाय बना लाती हूँ। तब आगे कुछ बात चीत होगी।'

आँगन में पड़े हुए दो मोढ़ों में से एक को खींच कर दामोदर बैठ गए। चाय आ गई। चाय का प्याला घोरपड़े के हाथों में पकड़ाते हुए, रंजिनी बोलीं—

'हाँ अब कहिए ! क्या कहना चाहते थे आप ?'

'मैं सोच रहा हूँ कि आखिर क्या हम सिर्फ मशीन बन कर ही

रह जायँगे ? क्या इसी तरह उस विराट व्यक्तित्व का निर्माण होगा ? अगर हम पशु हो जाते तो भी भला ही होता लेकिन हम जड़ और निर्जीव मशीन होकर क्या करेंगे ? इस सबसे कुछ बनता दिखाई नहीं पड़ता !' स्पष्ट ही वकील साहब के स्वरों में सिगरेट और चाय पीने मे अब कुछ कोमलता आ गई थी।

'अब बताती हूँ। आप तो उस वक्त बहुत तैश में थे न ! किसी लिये मैं भी नहीं बोली !'

वकील साहब अपने इस बेतुके तैश की बात सुनकर कुछ झेंप गए। कहा---

'बात यह है कि आखिर क्रोध भी तो संवेग ही है न ! तुम तो जानती होगी, गुर्दे के ऊपर 'एड्रिनल ग्लैण्ड्स' होते हैं। उनसे जब 'एड्रलीन' निकलने लगता है तब क्रोध उत्पन्न होता है ! इसमें इसी का क्या ? . . . क्या कहूँ ? तैश आ ही गया !'

रंजिनी उनके जवाब पर कुछ हँस पड़ी। फिर उनकी गंभीर मुद्रा देख कर स्वयं भी संयत स्वरों में बोली---

'देखिए ! बात यह है कि हमने ठीक से अपने इस रोमांस कार्यक्रम को नहीं चलाया। हमने उसे कल्याणकारी स्वरूप नहीं ग्रहण करने दिया। हमारे क्रिया कलापों से रोमांस का वह तत्व नहीं पनपने पाया जो हमारे रोमांस को अधिक सुंदर, सुदृढ़ और सशक्त बनाता है, जो हमारी प्रीति में हमारी आस्था को और भी दृढ़ करता. जो हमें अंधकार में भी विश्वास दिलाता ! जैसा फ्लोरेंस नाइटिंगेल ने कहा था . . . . .'

'क्या है वह तत्व ?' मनोवैज्ञानिक पंडित अपने ज्ञान को चुनौती मिलते देख कर बोल पड़े !

'वह तत्व है 'विरह'! बिना 'विरह' के हमारा प्रेम विकसित ही नहीं हो सकता है। बिना विरह के रस नहीं आता। जब तक चीज सामने रहती है तब तक हम उसका महत्व नहीं जान पाते। लोग सामने से हट जाते हैं तो उन्हें श्रद्धांजलियाँ मिलती हैं! विरह ही प्रेम भाव का सीमेन्ट है। विरह के विना कोई भी नायक या नायिका अपने मनोवांछित प्रेयसी प्रियतमा को प्राप्त नहीं कर सका। मैंने तो सभी उपन्यासों में पढ़ा है कि विरह का होना बड़ा ही आवश्यक है!' इस बार रंजिनी समझा समझा कर बोल रही थीं।

दामोदर बोले—

'यह जो अलग अलग मकान लेकर रह रहा हूँ, यह विरह नहीं तो और क्या है? अपने शरीर को तुमसे अलग रख कर, अपने को तुमसे, तुमको अपने से दूर रख कर यह जो अपनी काया को, जला रहे हैं, गला रहे हैं, यह विरह नहीं तो और क्या है?'

रंजिनी ने कहा—

'यह विरह नहीं! यह तो मन बहलाव है। पास पास बगल बगल न रहे, आमने सामने रहे। हर वक्त हम और आप एक दूसरे को देखते रहते हैं! हर शाम एक दूसरे के साथ गुजारते हैं ही! और चाहिए भी क्या? इसी से हमारे संयोग वृत्ति की तृप्ति हो जाती है और हमारा असली विरह नहीं जग पाता है।'

'तो फिर तुम्हारी समझ से असली विरह क्या है?' अंततः घोरपड़े ने जिज्ञासा की।

'असली विरह वह है जिसमें नायक या नायिका रेलगाड़ी, हवाई जहाज या जहाज से कहीं दूर चले जायँ! तभी वह असली दूरी होती है। ऐसी कोई भी दूरी जो रिक्शे ताँगे, इक्के या साइकिल से

हट सकती हो, वह असली विरह नहीं जगाती। उसमें तो अपनी ही इच्छा पर मिलना और न मिलना निर्भर करता है। हमारे सामने न तो हमारी विवशताएँ ही जोर कर पाती है और न हमारी सीमाएँ ही बाधा बनती हैं। रेल पर चढ़ कर चाहे एक ही स्टेशन क्यों न जाना हो लेकिन उसका ध्यान मात्र हमारी सीमाओं को हमारे सामने खड़ा कर देता है। ऐसी ही स्थिति में वे तत्व विकसित होते हैं जो कुल मिला जुला कर 'विरह' का निर्माण करते हैं! हमे उन्हीं तत्वों को जगाना चाहिये।'

एकाएक रंजिनी से ऐसी अप्रत्याशित ज्ञान चर्चा सुनकर वकील साहब विस्मित रह गए। उन्हें न सिर्फ आश्चर्य हुआ बल्कि अपनी ही दिये हुए उपन्यासों और सस्ती पत्र पत्रिकाओं की सफल ट्रेनिंग पर वे अत्यंत पुलकित हो गये। बोले—

'तो क्या अब मै कहीं और जाकर वकालत शुरू करूँ? इसमें तो 'टाइम' भी लगेगा और बेकार ही शक्ति और धन का बड़ा अपव्यय होगा!' इसी समय वकील साहब को बार एसोसिएशन में अपने सहयोगियों द्वारा किये हुए मजाक याद आ गये। एक बार उनके मन में आया कि उन्हें बनारस से बाहर चला ही जाना चाहिए! मगर फिर रुक गये। तब तक रंजिनी ने बात आगे बढ़ाई—

'नहीं इसकी जरूरत नहीं होगी। बनारस से तुम्हारे हटने से बेकार एक तमाशा खड़ा होगा। मैं ही कुछ दिनों के लिये बाहर हो आऊँ तो अच्छा रहेगा!'

'लेकिन कहाँ?'

'इलाहाबाद के कमला अस्पताल में मेरी एक सहेली है। उसने मुझे बुलाया है। सोचती हूँ वहीं कुछ दिन को चली जाऊँ! अस्पताल

का भी कुछ काम ले लूँगी। आसानी से कुछ दिनों रह जाऊँगी। जब हमारा वियोग पूर्ण विकसित हो जायगा तब मैं तुम्हारे कहने से या लिखने पर वापस चली आऊँगी! अपने तजुरबे को पूरा करने के लिये यही एक चारा है!'

वकील साहब मौन हो गए। बात तो समझ में आ रही थी लेकिन बनारस से रंजिनी के इलाहाबाद जाने की बात उनको खल रही थी। सोच रहे थे कि यदि आपकी कोई असली ससुराल होती तो वे रंजिनी को वहाँ भेज कर आसानी से अपने दोनों के अंदर विरह जगा सकते थे! जीवन में आज पहिली बार उन्हें बीवी के मायके का महत्व समझ में आया। वे यह भी समझ रहे थे कि शादी के बाद बीबी को मायके क्यों जाना चाहिये। बुजुर्गों ने औरतों की विदा के लिये कुछ समय इसीलिये पूर्व निश्चित कर रक्खे थे। डाक्टर चारिया के यहाँ भेजने से न तो बात ही बनती और न रंजिनी की इच्छा ही पूरी होती! रिक्शे, ताँगे या साइकिल से हट जाने वाली दूरी, भला विरह कैसे जगाती? दामोदर अपने ही जाल में उलझ गए।

उनकी उलझन देखकर रंजिनी फिर बोलीं—

'आप फ़िक्र न करें। मैं अपना प्रबंध कर लूँगी। कृष्णमाधव जी से एक बार मैंने सुना था कि उनके एक मित्र इलाहाबाद में रहते हैं। मैं उनके साथ भी ठहर सकती हूँ। फिलहाल तो मैं अपनी सहेली के ही साथ ठहरूँगी। हमारी पुरानी दोस्त है। हम लोगों ने साथ साथ ट्रेनिंग पास की थी। इस बीच आप भी यहाँ अच्छी तरह विरह जगा सकते हैं। हमें खूब प्यारी प्यारी चिट्ठियाँ भेजिएगा। मैं भी

आपको वहां से पत्र लिखा करूँगी ! आप देखिएगा कितना मजा आएगा !'

सब कुछ सुन लेने के बाद अब वकील साहब के सामने राजी होने के अलावा और कोई चारा न था। वे एक ध्येय के लिये ही कष्ट उठा रहे थे ! अपने तजुरबे से वे सब को चौंका देना चाहते थे। चौंकाने के लिये, ऐसा कुछ त्याग करना आवश्यक ही था। यह तो एक तपस्या थी ! क्या करते ? मृतप्राय रोमांस के पुनर्जीवन और उसके स्थायित्व के लिये वे अंततः राजी हो गये।

'ठीक है। अच्छी बात है।' कह कर वे उठ खड़े हुए।

चौथे दिन रजिनी का बिस्तर अपने ही हाथों से बाँधकर इलाहाबाद जाने वाली गाड़ी पर मनोवैज्ञानिक दामोदर उन्हें भारी मन, और गीली पलकों के साथ बिठा आए।

अब वे अपने अंदर विरह जगाने को तैयार हो गए।

o

आठ

उधर सुब्बारंजिनी की गाड़ी छूटी और इधर घोरपड़े विरह में मछली की भाँति तड़पने लगे। जीवन प्रेरकशक्ति के हट जाने पर सूना सूना हो गया। फिर भी वे जानते थे कि यदि प्रेरक के बिना वे प्रतिक्रिया को चलाते रहे तो एक दिन उनका मनोविज्ञान प्रेरक को उनके मन माफिक बना देगा। इसीलिये उन्होंने प्रेरक पर नहीं वरन् प्रतिक्रिया अर्थात् 'विरह' पर जोर देना शुरू कर दिया।

सबसे पहिला काम तो उन्होंने यह किया कि सामने वाला मकान छोड़ दिया। वे अपने असली मकान में वापस आ गये। उन्होंने सोचा कि इस मकान में ही रह कर वे अपनी प्रियतमा की याद भली भाँति कर सकेंगे। हर समय याद ताजी होती रहती थी और हर क्षण वे रंजिनी के स्पर्श का स्पंदन महसूस करने की कोशिश करते थे। वकील साहब ने अपना घर इस ढंग पर सजाया कि उनका विरह अधिक जाग्रत हो सके! अपने कमरे से उन्होंने वे सभी चीजें हटा दीं जो उनको संयोगी क्षणों की याद दिलाते थे। कमरे के बीचोबीच दीवार पर रंजिनी की एक बड़ी सी फोटो फ्रेम करके उन्होंने ला टाँगी। उसके ऊपर वे रोज ताजे गुलाबों की एक माला चढ़ाते और उसके पास दो अगर बत्ती सुलगाते! नीले परदे बदल कर उन्होंने हल्के गुलाबी रंग के कर दिये ताकि कमरा उन्हें हर समय अंगारे की भाँति संतप्त किया करे। काशी के एक कलाकार को वकील साहब किसी तरह

चिगेरी मिन्नत करके बुला लाए और उन्होंने उनसे दीवारों पर दो भीतचित्र बनवाए। एक चित्र में यह दिखाया गया था कि एक पेड़ पर दो जोड़ बैठे हुए कलोल कर रहे हैं और एक कोने में एक अकेला पंछी उनको देख कर सिर झुकाए बैठा हुआ है। दूसरा चित्र था—तीन क्रमबद्ध चित्रों का एक पूरा चित्र। पहिले में एक ठूँठ दिखाया गया था, दूसरे में उस ठूँठ पर आकर एक कोयल बैठी हुई दिखाई गई थी और तीसरे में वह कोयल उस ठूँठ से उडकर जाती हुई दिखाई पड़ रही थी। ठूँठ के तने में दो डरावनी आँखें बनाई गई थी जिनमें से दो बड़े बड़े आँसू चू रहे थे। अक्सर वकील साहब टकटकी बाँध कर उनको देखा करते थे।

कमरे का दृश्य यथासंभव बदल दिया गया। रंजिनी जिन चीजों को खरीद कर लाई थीं वे सब इस्तेमाल से अब अलग हो गई थीं। उनको 'म्यूजियम पीस' की तरह घर की शीशेदार आलमारी में सजा दिया गया था। वकील साहब जब बहुत विह्वल हो जाते थे तो उस अल्मारी को खोलते थे—कभी खाना बनाने वाली करछुल को कलेजे से लगा कर गरम गरम साँसें छोड़ते तो कभी बुनाई करने वाली सला-इयों को चूम चूम कर लम्बी फूत्कार छोड़ते और फिर उठ कर कमरे में लगी तस्वीर के पास चले जाते और अपने आप उससे बुदबुदाते। इस तरह वे अपने अंदर कातर वातावरण उपस्थित करके विरह जगाने लगे।

परन्तु मनोवैज्ञानिक घोरपड़े यह समझते थे कि मात्र बाह्य वातावरण किसी का जीवन दृष्टिकोण नहीं बदल सकता जब तक वह व्यक्ति स्वयं अपने मानसिक अनुशासन से अपनी विचारधारा को बदलने की चेष्टा न करे। दामोदर इसके लिये भी चिंतित थे।

मुब्बारंजिनी के वियोग में उनका जी उचट गया। किसी काम में उनका मन न लगता। अपनी तरफ से तो सूख कर काँटा भी हो जाना चाहते थे मगर बस नहीं चलता था! चाँदनी रात में उनको डर लगता था। बाहर नही निकलते थे। चांदनी रात को वे ऐसी नागिन समझने की कोशिश करते जो डॅस कर उल्टी हो गई है। कभी रात में तारा टूटता तो वह बेचैन होने लगते! उन्हें यह सुधि नहीं रह जाती कि वे क्या कर रहे हैं। सिनेमा देखने जाते तो एक ही तस्वीर के कई 'शो' देख डालते!! घर लौटते तो अकेले में सिनेमा के गीत गुनगुनाते और जी बहलाते! बार बार मन भर आने पर वे आँसू बहाना चाहते थे। मगर हर बार आँसू साथ नहीं देते थे। इसके लिये उन्होंने प्याज के अर्क और ग्लैसरीन का सहारा लिया। वकील साहब हर अवसर पर जरूरत के मुताबिक आँसू गिराते थे। कहीं सिर्फ हल्की सिसिकियों से ही काम चल जाता था और कहीं धारा प्रवाह रोना होता था। हर मौके के लिये उनके पास प्रबंध था। अगर वक्त पर उनकी आँखों से आँसू न निकलता तो वे अपनी आत्मा के सामने अपने को आप दोषी ठहराते। वे अपनी निगाहों में स्वयं दोषी न हों इसके लिये उन्होंने प्याज के अर्क का सहारा लिया।

फरवरी का महीना आ गया था। खुर खुराहट पैदा करने वाला तथा कथित 'मलयानिल' चलने लगा था। उस दिन बसंत था। वकील साहब बसंत की टोह कई दिन से लगाए बैठे थे। उन्हें भी पता था कि बसंत के दिन खास तौर से वियोग कस कर चढ़ता है। इसीलिये वे भी बसंत के जादू के लिये तैयार थे।

सुबह से उठकर उन्होंने पहिला काम यह किया कि नौकर को

आगाह कर दिया कि कोई भी आए तो उसे 'साहब नहीं है।' कह कर वापस करो! दूसरा काम उन्होंने अपना कमरा सजाने का किया। कमरे में खूब धूपदीप जलाया। खुशबू की। फिर बिस्तर पर लेट कर 'ओह ओह' करते हुए उन्होंने तकियों में मुंह छिपा लिया। हाथ बढ़ा कर प्याज के अर्क वाले रूमाल को आँखों के पास कर लिया। एक तकिया जब भीग गई तो दूसरी उठाई! सहसा दरवाजे पर थप थपाहट सुनाई पड़ी। झट से उठकर लाल गटापारचे का चश्मा लगा लिया। आज सुबह से ही वे यह चश्मा लगाये हुए थे क्योंकि वे कमरे की सभी चीजों को अंगारों की भांति वियोग में जलती हुई देखना चाहते थे और उसके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं था। दरवाजे पर बोलती हुई आवाज को उन्होंने पहिचान लिया था। परमभक्त कृष्णमाधव जी थे। मगर नौकर ने आने नहीं दिया। 'साहब नहीं हैं।' का जवाब दोहरा दिया।

दिन भर वकील साहब का बहुत उदासी में कटा। उन्मन उन्मन, खोए खोए, बेसुध बेसुध वे अपने आँगन में टहल रहे थे। सहसा डाकिये ने आवाज दी। लपक कर वकील साहब ने दरवाजा खोला। डाकिये ने घोरपड़े के हाथ में एक नीला लिफाफा रख दिया। लिफाफे से मोतिया इत्र की महक आ रही थी। मोतिया इत्र घोरपड़े को पसंद है, यह रंजनी को छोड़ कोई दूसरा नहीं जानता था। कांपती निगाहों से वकील साहब ने देखा उस पर रंजिनी के हाथों की ही लिखावट थी। डाकिया आगे बढ़ गया था। उसे उन्होंने फिर बुलाया और एक चवन्नी इनाम दी। वह चकित होकर बोला—

'बाबू जी खत बैरंग नहीं है। ठीक है! महसूल पूरा लगा हुआ है।'

' नहीं नहीं तुम ले जाओ। तुम्हारे लिये है यह!' एकाएक दामोदर को कँपकँपी सी आ गई।

डाकिये ने कुछ प्रसन्नता और आश्चर्य से चवन्नी जेब में डालते हुए अपना रास्ता पकड़ा।

वकील साहब ने दरवाजा बंद कर लिया।

चुपचाप अपने कमरे में चले गए। तकिये के नीचे वह खत दबा दिया फिर लेट कर बेचैन होने लगे। एकाएक साहस करके उन्होंने वह खत निकाल लिया। लिफाफा बहुत सम्हाल कर एक कोने मे फाड़ा। लिफाफे के अंदर एक नीला कागज भी था। दामोदर ने देखा, हाँ सुब्बारंजिनी का ही खत था। बस उन्होंने खत लिफाफे सहित अपनी छाती से चिपका लिया। हाथ बढ़ा कर तकिये के नीचे रक्खा हुआ रुमाल भी उन्होंने निकाला।

हर तरह से लैस होकर अब उन्होंने खत पढ़ना शुरू किया। लिखा था:

मेरे प्राण प्यारे,

तुमसे दूर होकर मैं कितनी बेचैन हूँ, यह मैं ही जानती हूँ!

इतना पढ़ते ही उन्होंने खत को फिर कलेजे से लगा लिया।

कहना न चाहिये कि इस वक्त तक वे तकिए के नीचे रक्खे हुए रूमाल का उपयोग कर चुके थे! थोड़ी देर सुबकियाँ लेकर उन्होंने आगे पढ़ना शुरू किया:

मेरे जीवनधन! आखिर यह हमारी तुम्हारी दूरी कब दूर होगी! मेरी यह वियोगअग्नि कब शांत होगी? हाय! क्या जीवन में इसीलिए प्यार मिला है कि हम मिल कर बिछुड़ जायें? क्या उस परमात्मा की आँखों में प्यार का कुछ भी मूल्य नहीं है? . . . (याद रखिए कि इस बीच में वकील साहब हर वाक्य के बाद अपना रुमाल इस्तेमाल करते जा रहे हैं!!) उफ! यह आसमान हम पर कैसी मुसीबत ढा रहा है!

यहाँ तक पढ़ते पढ़ते तो उन्हें सचमुच वाली रुलाई आ गई। इस बार उन्हें रूमाल की जरूरत नहीं पड़ी। उनके मानसिक अनुशासन ने अबकी उनकी सच्ची मदद की। उन्हें लगा कि जैसे सचमुच कोई बड़ी भारी दूरी हो गई है। वह यह भूलने में समर्थ हो गए कि यह दूरी उन्हीं की उपज है!! बार बार खत आगे पढ़ने की कोशिश करते थे लेकिन उनकी आँखें हर बार डबडबा जाती थीं। अक्षर धुंधले पड़ते जाते थे! वे समझ नहीं पाते थे कि आगे क्या लिखा हुआ है। घोरपड़े ने चिट्ठी फिर तकिये के नीचे डाल दी और चुपचाप पड़ गए। जब तक उनका मन शांत नहीं हो जाता, तब तक वे चिट्ठी आगे नहीं पढ़ेंगे, ऐसा उन्होंने निश्चय कर लिया। थोड़ी देर बाद मन से तो रुलाई आनी बंद हो गई लेकिन आँखों में प्याज का असर कुछ कुछ बाकी था। काफी देर तक रद्दी म्यूनिस्पिलटी के पाइप की तरह उसमें से पानी रसाता रहा। थोड़ी देर में उन्होंने खत को फिर निकाला। अबकी अपना दिल कड़ा करके वे इस बात

गए तुल गए कि वे खत को पूरा पढ़ कर ही दम लेंगे। आगे के वाक्य पढ़े :

अब तो यह व्यथा झेली नही जाती ! तुम कैसे हो, लिखना। मेरी याद कभी आती है या इतनी जल्दी ही भूल गए निष्ठुर? (यहां तक पढते पढ़ते उनकी आंखों का पाइप फिर उस तरह से बहता जिस तरह कभी जाड़े की भोर में ज्यादा दबाव से पानी ज्यादा मिलने लगता है—क्योंकि उस वक्त उसका इस्तेमाल कोई दूसरा करने वाला नहीं होता है!) तुम मेरे लिए बहुत परेशान न होना। मै यहां किसी न किसी तरह अपना दिल बहला ही लूंगी। तुम खुश रहना नही तो मै भी यहां रोती ही रहूंगी !

तुम्हारी ही बिसराई
(अगले खतों मे कभी कभी ठुकराई भी!)
—रंजिनी

पत्र पढ़ कर थोड़ी देर के लिए तो वकील साहब यूं पड़े रह गए कि जैसे वे अपने आप को यह समझा रहे हों कि वे मूर्च्छित हो गए है।

थोड़ी देर बाद वे उठे। अपने आप को स्वस्थ चित्त बनाया। फिर अपना नया खरीदा हुआ लेटर पैड उठा लाए। उसमें मोतिया इत्र लगाया और फिर फाउन्टेन पेन लेकर खत लिखने बैठ गए। 'मेघदूत' पढ़ पढ़कर वे प्रेमालाप के बहुत से तरीके जान गए थे!

बहुत देर तक उनके सामने यह समस्या रही कि वे रंजिनी को क्या लिखें! उनको न यह समझ में आ रहा था कि वे उसे किस प्रकार संबोधित करें और न यही कि वे अगर संबोधित करके खत भी लिखें तो क्या लिखें। अंत में उन्होंने बहुत कुछ सोच विचार कर लिखा :

मेरी प्रियतमा !

फिर बाद में समझे कि यह तो सब कोई लिखता होगा अतः उन्होंने इसको काट दिया। इसके बाद उन्होंने पचीसों संबोधन लिखे और उन्हें किसी न किसी कारणवश काट फेंका। अंततोगत्वा 'मेरे प्राणों की प्रेरणा' लिख कर उनको कुछ संतोष हुआ। फिर तो आगे चिट्ठी का मजमून जोर कर गया। उन्होंने चटपट लिखा :

तुम चली गई हो तो ऐसा लगता है कि जैसे पिंजरे से तोता उड़ गया है, खाली पिंजरा पड़ा हुआ है ! तुम चलीं गई हो तो ऐसा लगता है कि प्राण निकल गया, शरीर पड़ा हुआ है, तुम चली गई हो तो ऐसा लगता कि कैदी छूट भागा है लेकिन जेल अब भी उसी तरह बना हुआ है ! तुम्हारे जाने के बाद मेरा मन बार बार यही कहता है कि मैं कहीं जाकर डूब मरूँ ! जीवन का अब मेरा कोई लक्ष्य नहीं रह गया है, लेकिन बार बार तुम्हारा प्यारा मुखड़ा मुझे याद आता है, बार बार अपनी वे रस भरी चाँदनी रातें याद आती हैं। हर रोज उन अँधेरी गलियों को देख देखकर अब भी मैं आठ आठ आँसू रोता रहता हूँ ! तुम मुझे छोड़ कर चली गई हो तो..

इतना लिखते लिखते घोरपड़े फफक फफक कर रोने लगे ! उनकी आँखों में जैसे अबकी नियाग्रा प्रपात फूट पड़ा। आगे उनसे बहुत देर तक नहीं लिखा गया। दो दिन यही हाल रहा। जब वे चिट्ठी लिखने बैठते तब उनको मजबूरन उठना ही पड़ता था और चिट्ठी पूरी नहीं हो पाती थी। इस तरह जब कई अवसर निकल गए तो बेचारे दामोदर ने बड़ी मेहनत से किसी तरह वह चिट्ठी पूरी की और उसे डाकखाने में डाल दिया।

घोरपड़े विरह-व्यथा से लोटने लगे। उनका अंतर व्याकुल हो गया। कभी कभी तो वे दो तीन दिन तक घर से बाहर कदम नहीं

निकालते थे। घर के भीतर ही पड़े रहते और शून्य दृष्टि से आकाश की ओर निहारा करते। फिर कभी जब घर से बाहर निकलते तो सुबह से शाम हो जाती लेकिन उन्हें घर की याद भी न आती! वे खोये खोये से सब ओर घूमा करते। हर दूकान को वे इतनी तन्मयता से देखते हुए निकलते कि दूकानदार को लगता कि बस वे अब किसी चीज की फरमाइश करने ही वाले हैं लेकिन दामोदर उन दूकानों की तरफ देख कर भी सचमुच कुछ नहीं देखते थे! वे खोये खोये ही रहते थे, ऐसा वे महसूस करने की कोशिश करते थे। मुंह में सिग-रेट दाबे दाबे वे जब दूकान झाँकते चलते तो उनके मुख पर एक अजीब सी करुणा, एक अजीब सी विगलित भावना, एक अजीब सी मुस्कराहट, एक अजीब सा व्यंग, एक अजीब सा अविश्वास, एक अजीब सी श्रद्धा, एक अजीब सी कुंठा, एक अजब सी बेवकूफी मिली हुई दिखाई पड़ती थी! यद्यपि वे अब अपने मित्रों में पहिले से कुछ अधिक रुचि लेने का अभिनय करने लगे थे किंतु फिर भी अपनी आदत के अनुसार वे उनको काट जाने में ही अधिक सुख का अनुभव करते थे।

उस शाम को जब घोरपड़े दशाश्वमेध घाट पर एक किनारे बैठे हुए, अनमने मन से सिगरेट पीते हुए एक भजन गाने वाले को देख रहे थे तो एक अजीब टुइयाँ सी आवाज ने उनका ध्यान अपनी तरफ खींचा—

'जरा माचिस दीजिएगा भाई साहब!'

वकील साहब ने अपनी निगाह उठाई तो एक अत्यंत काला कलूटा बौना, काले रंग का ही सूट पहिने अपनी बत्तीसी निकाले

हुए सामने खड़ा दिखाई पड़ा। अनमने रहने के बावजूद भी वे अपनी हँसी उस वेशभूषा को देख कर रोक न सके। बौने ने फिर पूछा—

'माचिस नहीं है क्या? जरा सिगरेट ही दे दीजिए अपनी बीड़ी जला लूँ।'

वकील साहब ने दियासलाई दे दी। बौना भी वहीं पास सीढ़ी पर बैठ गया। बातों का सिलसिला चलाते हुए वह ताबड़ तोड़ पूछने लगा—

'यहीं रहते हैं? रोज आते हैं? क्या करते हैं? 'आदि

उसी सिलसिले में वकील साहब को पता चला कि इस बौने का नाम गुलाब चंद 'सिरीवास्तो' था और वह कवि था। वह काशी का पुराना रहने वाला है और किसी अखबार में काम करता था। अपनी कारगुजारी का बयान करते करते बौने सिरीवास्तो ने बताया कि वह किस तरह पढ़ाई से अपना जी चुराता था। फिर बीस साल की उम्र में वह अखबार का शहरी संवाददाता हो गया और फिर पचीस साल की उम्र में वह तरक्की करता हुआ खेलकूद संवाददाता, फिर फिल्मी आलोचक, फिर बच्चों के कॉलम का लेखक फिर अब वह उसी अखबार में उपसंपादक हो गया था। गुलाबचंद ने बताया कि वह शहर के एक एक कोने से परिचित है और वकील साहब का नाम सुनकर उसने ऐसा लपक कर हाथ मिलाया जैसे वह इन्हें बरसों से जानता रहा हो।

'तो आप कविता भी लिखते हैं?' दामोदर ने जिज्ञासा की।

'हाँ हाँ सैकड़ों 'कविता' लिखता हूँ। मूँड़न शादी ब्याह से लेकर अपने मन की 'बेदना' सब पर कबिता लिखता हूँ। मेरी कबिता आपने पढ़ी नहीं क्या?'

'नहीं मैं तो नहीं पढ़ सका! अखबार हिंदी का कम देख पाता हूँ। लेकिन साहब आप अखबार में काम करते हैं और कविता भी लिख लेते हैं, यह तो कमाल की बात है!'

'कमाल? हां कमाल ही समझिए! बात यह है कि 'जूनियश' तो हर जगह चमकता है चाहे वह अखबार में हो और चाहे भाड़ झोंके! (घोरपड़े को पता चला कि बौना हमेशा 'जीनियस' को 'जूनियश' ही बोलता है और उसे कोई दुरुस्त करने का साहस नहीं रखता!) मेरी कबिता तो सभी सहयोगी अखबारों में छपती हैं। 'कासी' के सभी 'कबि सम्मेलनों' में जाता आता हूँ।'

कवि से भेंट होने पर मनोवैज्ञानिक वकील को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे कवि और कविता को एक मनोविकार और ग्रंथियों का उच्चाटन मानते थे लेकिन अपने तजुरबों को पूरी तरह जाँचने का अवसर नहीं मिल पाया था। इस व्यक्ति से मिल कर इसीलिये उन्हें बड़ी खुशी हुई। साथ ही यह बौना गुलाबचंद अखबार में भी काम करता था और दामोदर अखबार को मानवजीवन का अभिन्न अंग मानते थे, इसलिए आकर्षण का यह एक कारण और भी था। गुलाबचंद दोस्ती करने में बड़े उस्ताद थे। उँगली पकड़ते ही पहुँचा पकड़ते थे। सो उन्होंने वकील साहब का भी पहुँचा पकड़ लिया। नतीजा यह हुआ कि रोज काशी के घाटों पर वे मिलते और गुलाबचंद उन्हें दस पाँच कवितायें सुनाता।

दो परिचितों के बीच यदि कहीं एक सूत्र मिल जाय तो उनको घनीभूत मित्र बनते देर नहीं लगती। बातचीत के ही दरम्यान गुलाबचंद ने बताया कि वह एक लड़की को दिल से चाहता है मगर वह लड़की इतनी निर्मोही है कि पलट कर उसकी तरफ नहीं देखती! वह

शायद गुलाबचन्द का रूप रंग नही पसन्द करती। गुलाबचद ने बताया कि किस तरह उसने अपनी 'कवितायें' उसी के प्रति लिखी हैं और कैसे मौका निकाल कर उस तक वह 'कविता' गुलाबचंद ने पहुँचवा दी! उधर घनिष्ट मित्र समझ कर घोरपड़े ने भी उन्हे अपना हाल बताया। वे एक दूसरे को ढाढस देते और इस प्रकार उनकी दोस्ती कल्पवृक्ष की भाँति बढ़ती चली गई।

मन से मन मिल जाने पर घोरपड़े को बड़ी राहत मिली। फिर भी उन पर विरह का प्रभाव स्पष्ट ही था। इधर गुलाबचंद की मित्रता ने भी दामोदर पर अपना रंग दिखाया। उन्होंने अपनी मेज पर तमाम प्रेम गीतों की किताबें खरीद कर ला सजाई। धीरे धीरे उनकी मेज पर सिर्फ कविता की ही किताबें दिखाई पड़ती थीं। उन पर दामोदर ने खूबसूरत अक्षरों मे अपना नाम लिख छोड़ा था। जब वे कमरे में अकेले होते तो वे वियोग गीत चिल्ला कर गाते और उससे उनको बड़ी शांति मिलती थी। गुलाबचंद की बात पर इसी लिये उनकी आस्था और भी दृढ़ हो गई।

रंजिनी जी के खत इस बीच उसी तरह से आते और घोरपड़े उतने ही प्रेम के साथ उनके पत्रों का उत्तर देते थे। इसके लिए वे एक पुस्तक ही ले आए थे जिसमें विवाहित लोगों को प्रेमपत्र लिखने की तमाम हिदायतें लिखी हुई थीं। अतएव उन्हें संबोधन लिखने में तो नही किंतु पत्र में क्या लिखें, इसके बारे में अब भी कभी कभी बड़ी कठिनाई पड़ती थी।

दामोदर जी चूँकि अचेतन पशु प्रवत्ति से भी मानवमन परिचालित मानते थे, इसलिए उन्हें धीरे धीरे यह लगा कि इस वियोग में सबसे बड़ी बात यह हुई है कि उनकी पशु प्रवृत्ति इधर बढ़ रही है। उन्होंने

सोचा कि इसकी रोकथाम किसी न किसी तरह जरूरी है अन्यथा, इसके चक्कर में पड़कर वे अपनी सारी साधना, सारी तपस्या एक दिन भंग कर डालेंगे। सोच विचार करते हुए खोये खोये से दामोदर अपनी अजीब सी मुख मुद्रा बनाए, अपने अजीब ढंग से किसी तरह फिर उस शाम घाट के किनारे आए।

गंगा की लहरों को नवमी का चाँद अपनी किरनों से जैसी चुटकी काट रहा था, वह किसी भी प्रेमी जीव के लिए अद्भुत टॉनिक हो सकती थी! थोड़ी देर तक अपनी सुध भूलकर घोरपड़े वहीं खड़े रहे। एकाएक किसी ने उनके कंधे पर हाथ रख कर पूछा––

'कहिए! वकील साहब! आज कुछ जल्दी चले आए इधर?'

पलट कर देखा तो गुलाबचंद 'सिरीवास्तो' थे। दामोदर बोले:

'हाँ कुछ जल्दी ही चला आया। कहिए, आप भी आज खाली हैं क्या?'

गुलाबचंद ने बताया:

'चाँदनी आज बेहद अच्छी लग लग रही थी सो मैं अपने एक दोस्त को कह कर यहाँ चला आया हूँ। बात यह है कि सभी जानते हैं कि 'कबिता' करने वाले लोग चाँदनी को बेहद पसंद करते हैं!'

घोरपड़े ने बहुत दिन बाद, उस दिन गंगा में नौका बिहार का प्रस्ताव किया। गुलाबचंद ने अनुमोदन किया और दूसरे ही क्षण वे लोग नाव पर बैठे हुए शिवशंभु की नगरी में गंगा की लहरों और चाँद की किरनों का मजा लेने लगे।

नाव चल रही थी, सहसा गुलाबचंद ने छेड़ा––

'आज बहुत उदास हो यार! क्या बात है?'

दामोदर ने जवाब दिया––

'कुछ नहीं दोस्त!' गरम साँस लेकर आगे बढ़े, 'अब तो यह सारा ग़म नहीं सहा जाता! सोचा कई बार कि थोड़ी सी पी ही लिया करूँ। शाम को पी लूँ तो रात को बड़े मजे में सुध बुध खोकर, उसी में डब कर अपना ग़म ग़लत कर लिया करूँ! जब तक यह चेतना बाकी रहेगी, तब तक वही चीजें याद आती रहेंगी! रंजन का क्या ठीक, कि वह कभी लौट कर भी आएगी?' उनके स्वरों मे ठीक वही मन्द्र सप्तक का 'खड़ज' बोल रहा था, जो ऐसे मौकों पर फिल्मों के हीरो अपने गले से निकालते हैं!

गुलाबचंद के अंदर जो सबसे बड़ी विशेषता थी, वह यह कि उनके पास एक झोले में सब तरह की, सब अवसरों के लिए, सब आदमियों के लिए, सलाहें भरी रक्खी रहती थीं। जब कभी किसी को जरूरत पड़ी तो वे लोगों को उसी तरह सलाह मुफ्त में दे दिया करते थे जैसे हिन्दुस्तान का हर आदमी दूसरे को बीमार देख कर हमेशा एक मुफ्ती नुस्खा बता देता है! लेकिन जिस तरह नुस्खा बताने पर भी हिन्दुस्तान के बहुतेरे लोग बीमार ही दिखाई पड़ते है उसी तरह स्वयं गुलाबचंद भी उन सलाहों पर कभी काम नहीं कर पाते थे। वे कहते थे कि यदि वे अपनी सलाह पर खुद काम कर जाते तो आज वे इतने बड़े आदमी हो गए होते कि फिर दूसरों को सलाह देने के लिए वे उपलब्ध ही न हो पाते!

गुलाबचंद ने अपनी पतलून की 'क्रीज' को जरा ठीक करके गंभीर स्वर बना कर कहा—

'भाई, बात तो ठीक कहते हो! मैं भी तो इसी मुसीबत का मारा हूँ। कभी कभी पहिले सोचता था—लाओ इसी को पी कर अपना ग़म ग़लत कर डालूँ! लेकिन मुझे तो एक बड़ा अजीब तजुरबा हुआ!'

घोरपड़े ने जिज्ञासा की—

'वह क्या?'

'जिस तरह लोग पीकर उसी के रंग में डूब जाते हैं। उसी तरह मैंने तो 'कविता में वही आनंद पाया। पहिले मैं 'कविता' नहीं करता था। मैं तो सिर्फ संवाददाता ही था लेकिन क्या करूँ, मुसीबत की मार ऐसी पड़ी कि बस 'कवी' हो गया। वह जो मेरी कविता 'इस पार मिलूँ या कि उस पार सजनियाँ!' जो तुमने सुनी है, वह मैंने इसी तरह की एक घटना को लेकर लिखा था। वह कविता बड़ी चली। ज्यों ज्यों वह चली त्यों त्यों बड़ा रस मिला। बस ये समझो कि उसी में डूब गया!'

घोरपड़े सदा गुलाबचंद की कद्र इसीलिए करते थे कि वे अखबार में काम भी करते थे और साथ ही साथ कविता भी करते थे! मगर यह सलाह उनके किसी काम नहीं आ सकती है, ऐसा समझ कर वे बोले:

'हाँ, भाई ठीक है तुमने तो कविता करके अपना सारा दुख, अपना सारा ग़म भुला दिया लेकिन मैं तो यह कर भी नहीं सकता। मुझे तो कविता आती भी नहीं! पढ़ भले ही लूँ लेकिन लिखना तो बड़ा मुश्किल है! वह तो सीखना पड़ेगा!! लेकिन मन में जिस तरह की ऊहापोह मची हुई है, वह भला सीखने भर का मौका कहाँ देगी?' दामोदर के स्वरों में निराशा बोल रही थी।

अब 'गुलाबचंद' की चिर-जागृति, सतत-सहायक-बुद्धि चेती। तत्काल बोल उठे—

'नहीं भाई, ऐसा निराश होने की जरूरत नहीं है! अब वह पुराने जमाने लद गए जब सीख सीख कर कविता की जाती थी!

अब तो बस मन में अगर भाव उठने की कोई भी गुंजाइश दिखाई पड़े, या न भी दिखाई पड़े, तो भी बड़ी आसानी से 'कवी' बना जा सकता है!'

घोरपड़े टुकुर टुकुर ऐसा देख रहे थे गोया वे अपनी मुक्ति का प्रवचन सुन रहे हों! उनके मुख पर जिज्ञासा ही न थी; उसमें श्रद्धा, भक्ति ओर विश्वास की भावना भी एक एक करके उतरती चढ़ती थीं! बौने 'सिरीवास्तो' ने आगे बताया—

'तुम नई-कबिता के 'कवी' हो जाओ!'

'यह नई क्या है?' जैसे घोरपड़े के मुंह से स्वतः फूट पड़ा।

गुलाबचंद कुछ हँसे। फिर समझाने पर उतारू हो गए।

'नई कविता नहीं जानते हो? सब कुछ अब नई-कविता है! तुम जो कुछ लिखोगे, वह सब नई कबिता मानी जायगी। नई कबिता लिखने के लिए सबसे अच्छी बात तुम्हारे लिए यह है कि तुमको न तो छंद सीखना होगा, न पिंगल रटना पड़ेगा। एकाएक कल सुबह उठोगे तो देखोगे कि तुम 'कवी' बने बैठे हो!'

'अच्छा?' घोरपड़े जी इतने सरल नुस्खे की कल्पना भी नहीं कर सकते थे!

'हाँ हाँ! तुम्हें कुछ भी नहीं करना होगा! बस अपनी कबिता में, अपने मनोविज्ञान के कुछ कड़े कड़े शब्द कुछ ऊट पटाँग बातें—जिनका एक लाइन से दूसरी लाइन तक कोई मतलब न निकले, और दो चार पेटेंट शब्द जैसे आस्था, कुंठा, विस्थापित, स्थापित, अहं, समिधा, बार बार दोहरा कर इस्तेमाल करना! अब कबिता का वह युग नहीं कि आप हृदतंत्री, मन की वीणा, टूटे सपने, अधूरे प्राण, निष्ठुर संसार आदि का इस्तेमाल करके 'कवी' बनें! अब तो बस

वही 'आस्था' और 'कुंठा' पर जोर रखना! भई, तुम तो खुद मनो-वैज्ञानिक हो, तुम समझ सकते हो कि और क्या क्या नई चीजें इसमें कहाँ कहाँ से खोज कर भिड़ा सकते हो! मैं तो सिर्फ 'जुर्नलश्टि' हूँ!' गुलाबचंद मुस्कराए। 'जूनियश' की तरह उनका 'जुर्नलिश्ट' भी अपना विशेष उच्चारण था जिसे सुनने के लिए दामोदर जी के कान काफी अभ्यस्त थे।

घोरपड़े को अब भी सुनने के 'मूड' में पाकर गुलाबचंद ने अपना भाषण जारी रक्खा :

'एक बार इसका मजा चख लोगे तो दामोदर! देखोगे कि कितना रस मिलने लगेगा। आप वह वाली पीना भूल जायँगे! बड़ा सस्ता नुस्खा है। प्रतिष्ठा भी मिल जायगी और हो सकता है कि आत्म-संतोष भी मिल जाय। अखबार में उन कविताओं को समय समय पर छपवा देना, मेरे ऊपर छोड़ दो! मैं सच कहता हूँ कि नई कविता चाहे तुम्हें आए या न आए लेकिन तुम 'नए कवी' जरूर मान लिए जाओगे! बहुत मुमकिन है कि मनोविज्ञान के अंदर जो काम तुम नहीं कर पाए, वह इसी के सहारे कर निकलो!'

वकील साहब के सामने उनका भविष्य फिर कुछ कुछ धुंध पड़ कर दिखाई पड़ने लगा था। वे इस धुंध को चीर डालना चाहते थे।

नाव से उतरते उतरते ही उन्होंने कविता के तमाम शब्दों को एक कागज पर लिख लिया ताकि वे उन्हें भूल न जायँ। आज जिस तरह उन्हें गुलाबचंद ने अपूर्व गुरुमंत्र दिया था, उसके लिए वे अत्यंत पुलकित और कृतकृत्य थे। वे यह भी सोच रहे थे कि यदि वे सचमुच 'सिरीवास्तो' से न मिले होते तो निश्चित ही वे एक दिन शराब पीकर पतन के गड्ढे में गिरे पाए गए होते!

o

नौ

बनारस के मनोविज्ञान शास्त्री उर्फ वकील साहब एकाएक आंख झपते ही नई कविता के कवि हो गए। कुछ नई कविताओं की बानगी देखी और कुछ कवियों से दोस्ती की, कुछ मनोविज्ञान की किताबों को उल्टा पल्टा; बस उन्हें नई कविता के कवि होते देर न लगी !

कवि बनने के चक्कर में पड़कर उन्हें अपने विरह ज्वर को कुछ एक दिनों के लिए थोड़ा दबाना पड़ गया। वे अधिक समय तक अपने घर के भीतर रह कर न तो स्पंदन महसूस कर पाते थे और न वे अब उस फोटो से ज्यादा बात ही करने का समय निकाल पाते थे। दामोदर को सहसा यह बात भी समझ में आई कि वे इस नई कविता के सहारे भी कुछ 'अनकॉमन' (असाधारण !) प्रयोग कर सकते हैं और इससे भी वे चमक उठ सकते हैं !

परमभक्त कृष्णमाधव जी घोरपड़े की इस हरकत से बहुत चिंतित हुए। वे अब भी उसी तरह आते जाते रहते थे लेकिन इस बीच 'गुलाबचंद सिरीवास्तो' को अक्सर बैठा हुआ देख कर वे उठकर चले जाते थे। कृष्णमाधव जी अब तक जिस घोरपड़े नामक वस्तु पर अपना एकाधिकार समझे बैठे थे उस पर जिस तरह गुलाबचंद ने उनके दृष्टिकोण से 'डाका' डाला था, वह उन्हें कतई पसंद नहीं आया था। अक्सर जब मौका मिलता था तो वे घोरपड़े को यह समझाने की चेष्टा करते कि यह 'सिरीवास्तो' अच्छा आदमी नहीं है। वे बताते

थे कि यह आदमी अपनी अखबारी बिरादरी में बदनाम है और इसकी सोहबत अच्छे आदमियों की नहीं है। कृष्णमाधव जी को यह भी बड़ी भारी चिंता थी कि वह आदमी कवि है और हो सकता है कि घोरपड़े को बरबाद कर दे! इसके लिए वे समझाते:

'कवियों से दूर की राम राम अच्छी होती है! नजदीक आने पर उनकी बीमारी दूसरों को भी लगती है! यही नहीं ऐसी भी बहुत सी चीजें पता लगने लगती हैं कि हमारी श्रद्धा उनकी उन रचनाओं से भी हट जाती है जिनको हम उनके परिचय के पहिले बड़े प्रेम से पढ़ते रहते हैं! दोनों ही हालतों में कवियों से दोस्ती करके आदमी पाता कुछ नहीं, बराबर खोता ही जाता है!!'

घोरपड़े जी कहते:

'नहीं नहीं! तुम समझते नहीं हो! उसमें ऐसी खराबी की कोई बात नहीं है। वह तो भला आदमी लगता है। फिर कविता करना तो कोई बुरी बात तो नहीं है! जानते हो मनोविज्ञान में कहा गया है कि दूसरों की सहानुभूति का शोषण करने के लिए कविता से बढ़िया और कोई माध्यम नहीं है!'

बहरहाल, परम भक्त कृष्णमाधव जी इस बहस में थोड़ी देर के लिए उलझते जरूर लेकिन वह किसी भी तरह से यह मानने के लिए तैयार न होते कि कवि अच्छाआदमी होता है। वे दलील में बराबर यें कहते कि शहर के अनेकों कवियों से उनका परिचय है और वे जानते हैं कि वे सब के सब मन के बड़े छोटे, स्वार्थी और दिमागी तौर पर निम्न स्तर के हैं!! घोरपड़े को यह सब विश्वास करने को जी नहीं चाहता था क्योंकि उनकी चीजें गुलाबचंद अखबार में

छपवाता रहता था। अंत में हर तरह से हार कर कृष्ण माधव जी ने खुद अपने आप को ही समेट लेने का निश्चय किया।

कविता का चक्र स्वीकार करने के बावजूद भी इधर घोरपड़े के मन में यह बात बराबर जोर से उछलती रही कि उनके वियोग का रस परिपाक शीघ्र ही होना चाहिए ताकि वे अपने चमत्कारिक प्रयोग को संसार के समक्ष घोषित कर सकें। इलाहाबाद-प्रवासिनी सुब्बा-रंजिनी के नाम वे प्रतिदिन रात में एक पत्र लिखने का नियम बनाए हुए थे। यहाँ से जब वे छः सात पत्र भेजते थे तो वहाँ से चार पाँच पत्र आ जाते थे। अनुपात यही रहता था।

रोज खत लिखने के कारण घोरपड़े को कुछ कुछ यह कठिनाई होती थी कि वे कहाँ तक प्रेम के विषय में लिखते रहें। दस बारह पत्रों में यह लिखने के बाद कि 'मैं विरह में मरा जा रहा हूँ। मैं रो रहा हूँ। मैं गा रहा हूँ। मैं तुम्हारे बिना जी नहीं सकता! (यद्यपि जी रहा हूँ—मरने की हिम्मत नहीं!!) आदि आदि, । उन्हें यह समझ में आ गया कि अब इस तरह काम नहीं चल सकता। उन्होंने अपने खत-लेखन में कई नए प्रयोग किए।

अक्सर जब वे खत लिखते तो उसमें कतई प्रेम व्यापार का जिक्र न करते। किसी खत में तो सिर्फ बनारस के घाटों की शोभा बखान करते। दूसरे खत में 'प्रकृति-वर्णन' आदि ही करके रह जाते कभी वे लिखते:

मेरी सुरभि,

आज दिन भर वासंती बयार बहती रही। गगन निर्मल रहा। कभी कभी एकाध अभ्र दल दिखाई भी पड़े तो वे आकर ऐसे उड़ गए कि जैसे मन में आई एक चिंता दूर हो जाय। धरती पर फूलों

की शोभा न्यारी है। हरी भरी सब क्यारी है! लहलहाती सरसों को देख कर मन नाचने लगता है। पादप समूहों के बीच से पक्षियों का कलरव अत्यंत भला लगता है।....

आदि।

तुम्हारा ही
कमल (या किसी दूसरे
फूल का नाम!)

फिर लिखते:

प्रिय सुब्बारंजिनी,

तुम चली गई हो तो यहाँ बड़ी झंझट है। कल आटा भी चुक गया है। नौकर पूछ रहा है कि तुम किस दूकान से मँगवाती थीं, उसे मालूम नहीं है। कृपया लिखो। मेरे एक दाँत में दर्द है। कल उखड़वा दूँगा। मेरे कपड़े वाले बक्स में रूमाल किधर रक्खे हैं?

तुम्हारा
घोरपड़े

इस तरह के खत वे अक्सर बीच बीच में लिख देते थे क्योंकि इसी से तो वे प्रेम की 'मनाटोनी' तोड़ते थे। अपने इन्हीं प्रयोगों में वे कभी कभी एक दम 'आफीशियल' यानी सरकारी खतों के 'स्टाइल में भी अपनी प्रेयसी को पत्र लिखते—

प्रिय महोदया,

आपका दिनांक———का पत्र मिला। धन्यवाद।

निवेदन है कि हम आप की रुचि का भविष्य में ध्यान रक्खेंगे और उसी तरह के कपड़े यहाँ से भेजेंगे।

उत्तर शीघ्र दें।

भवदीय
(घसीट में एक दस्तखत !)
कृते दामोदर विष्णु घोरपडे
एडवोकेट

इन सभी खतों से जब वे ऊब जाते तो हारकर अपनी ठेठ मनोवैज्ञानिक भाषा में ऐसा कड़ा प्रेमपत्र लिख मारते कि उसे समझने के लिए बड़े बड़े विद्यार्थी भी चारो खाने चित होकर गिरें ! खत इस तरह बेकार न हो जाय इसके लिए वे ऐसे कड़े पत्रों में सदा 'फुट नोट' लगाकर भेजते थे। जहाँ कड़ा शब्द आया, या जिसके संदर्भ की जरूरत पड़ी, तहाँ वे १, २, ३ नम्बर लगा कर नीचे फुटनोट में एक दूसरा नया खत ही लिख देते थे !

रात तो दामोदर विष्णु घोरपड़े की यूँ कट जाती थी। काफी देर सोचते थे फिर उससे भी देर तक लिखते थे और फिर उससे भी कम देर तक सोते थे ! इस तरह सबेरा हो जाता था।

इन सभी तरह के खतों के जवाब में सुब्बारंजिनी अनुपात में कम लेकिन वजन में भारी (अक्सर जिनके लिए घोरपड़े को बैरंग के पैसे भी भरने पड़े !) चिट्ठियाँ भेजती थीं। उन सब में और कुछ न होता, सिर्फ वही प्रेम का रोना ही मात्र होता ! किन्हीं किन्हीं खतों में वहाँ के अस्पताल और उनकी सहेली का भी जिक्र रहता लेकिन ज्यादातर उसी तरह के होते जिस तरह के खत बेवकूफ उम्र की लड़कियाँ लिखती हैं। घोरपड़े उनको पाकर बड़े मगन होते थे। उस दिन उसे पढ़ कर दूसरे दिन उसकी याद में वे अत्यंत मुदित रहते थे। यहाँ तक कि अपने मित्रों और सहयोगियों से वे उसी दिन बातें भी करते !

घोरपड़े में कविता का और गुलाबचंद के प्रति बढ़ता हुआ प्रेम देख कर, कृष्णमाधव जी को बड़ा घोर असंतोष हुआ। उन्हें यह विश्वास नहीं रह गया कि घोरपड़े अब उनके सच्चे-मित्र रह गए। इसी लिए उन्होंने अपने घनघोर मानसिक असंतुलन के कारण अपने विवाह के लिए स्वीकृति दे दी और एक दिन चुपचाप काशी नगरी के एक धनी साहु की बेटी से विवाह भी कर लिया। शादी की सूचना उन्होंने किसी को नहीं दी।

दामोदर अपने में ही खुद इतने डूबे हुए थे कि उनको अपने से अलग किसी दूसरी चीज की चिंता ही नहीं होती थी। इसीलिए उन्होंने इस बात की जरा भी परवाह नहीं की कि उनके परम भक्त कृष्णमाधव जी उनसे अलग अलग हो रहे हैं! वे तो अपने खतों, अपने रोमांस, अपनी कविता, अपने अचेतन, अपनी पशु प्रवृति और अपने अखबार में ही भटक रहे थे! सुब्बारंजिनी के खतों की लम्बी लम्बी गड्डियाँ उन्होंने बना ली थीं और अपने खाली वक्त में मन बहलाव के लिए, उन गड्डियों को निकाल कर वे अकेले में पढ़ा करते थे। कोई और न देख ले, इसके लिए वे उन खतों को काफी छिपा कर रखते थे!

एक दिन सबेरे सबेरे ही जब वे रंजिनी की बड़ी फोटो को नया माला पहिना रहे थे और नई अगरबत्ती जला रहे थे तभी उनको उसी कोने की खूँटी पर टँगी दाढ़ी मूँछ और जटा दिखाई पड़ी। सहसा अगरबत्ती जलाते जलाते वे रुक गए। उन्हें अपनी आत्मा की आवाज कमरे में फिर सुनाई पड़ने लगी—

'रोमांस में 'विलेन' ही शक्ति देता है! तेरे रोमांस में खल-नायक शक्तिहीन है!!'

वे गम्भ रह गये। थोड़ी देर तक वे यही सोचते रहे कि अपनी प्रेमकथा में किस प्रकार अपनी रोमांस को शक्तिवान बनाने के लिए अपने खलनायक को वे सक्रिय कर सकते हैं! अब तक खलनायक के रूप में जो कुछ हुआ था, वह सचमुच ही नाकाफी था।

वे कमरे में टहल टहल कर घूमने लगे। कभी कभी वे छज्जे पर भी निकल जाते। उनकी जेब में रखी हुई 'कैप्स्टन' की 'डिबिया' अधिया गई। धुएँ से सारा कमरा भर गया। इसी समय उनके सिनेमा-ज्ञान ने फिर उनकी सहायता की। उनके चेहरे पर हल्की सी मुस्कान आ गई!

सहसा वकील साहब दाढ़ी मूँछ और जटा लगा कर फिर विष्णु पांडुरंग धोरपड़े हो गए। उनकी काया में पांडुरंग की आत्मा आ बैठी। वे छज्जे पर कुर्सी पर बैठकर यह सोचने लगे कि आखिर उनके लड़के को क्या हो गया है? वे बार बार सोचने लगे कि आखिर वह अब भी इस तरह खोया खोया क्यों रहता है और दिन ब दिन सूख कर काँटा होने की कोशिश क्यों कर रहा है? हो न हो कोई बात जरूर है।

वकील साहब की दाढ़ीदार गार्जियन आत्मा ने सोचा कि लड़के का भेद, इसी के कमरे में पता लगाना चाहिए। यही सोच कर वे उस कमरे में घुसे जिसमें वह लिखता पढ़ता था। इस तरह का खल-नायक यही करता है!!

दामोदर को बाहर गया हुआ मान कर वे आहिस्ता से उस कमरे में घुसे। चारों तरफ चौकन्नी निगाह डाली। फिर उस कमरे की तलाशी लेनी उन्होंने शुरू की। पहिले तकिया के नीचे हाथ डाल कर ढूंढा। कुछ नहीं मिला। फिर उन्होंने तकिये के सारे गिलाफ

निकाल डाले। उसमें भी कुछ नहीं मिला। फिर चादर उलट डाली उसमें से भी कुछ हाथ न आया। इलमारी में बिछे हुए कागजों के नीचे जल्दी-जल्दी हाथ डाल कर देखा। एकाध कागज मिले भी लेकिन वे सब किसी खास राज का उद्घाटन नहीं करते थे। फिर किताबों को उल्टा पल्टा। अंत में उन्होंने उस दराज को तोड़ कर उसको भी देखने की ठान ली। गार्जियन रूपी वकील साहब ने ताली होते हुए भी उस दराज को तोड़ कर खोल डाला! उसके अंदर जो माल मिला उसे देख कर गार्जियन महोदय उछल पड़े!! उसमें वही नीले खुशबूदार लिफाफों की तीन गड्डियाँ थीं जो रेशमी रूमाल में बंधी थीं!!

'तो ये रंग हैं साहबजादे आपके! वही तो मैं कहूँ कि आखिर बात क्या है?' गार्जियन महोदय बोल पड़े।

फिर उन्होंने एक चिट्ठी खोल कर पढ़ डाली। ज्यों ज्यों वे एक के बाद दूसरी चिट्ठी पढ़ते गए त्यों त्यों उनकी त्योरी चढ़ती गई। रह रह कर वे अपनी नकली मूँछें मरोड़ने लगते थे और बड़बड़ाते थे—'लौंडे ने खानदान का नाम डुबो दिया! एक बार सफाई करने की कोशिश की लेकिन फिर भी नहीं मानता!! इश्क लड़ाता है।' उन्होंने अपना चेहरा सुर्ख बनाया और खतों की सारी गड्डी को उठा कर वहीं मेज पर खोल कर पटक दिया।

कोई आधा घण्टों बाद उसी कमरे में शीशे के सामने दाढ़ीदार चेहरे और गैर दाढ़ीदार चेहरे का वार्तालाप शुरू हुआ!

जब दाढ़ीदार चेहरे ने डाँट कर पूछा कि ये कैसे खत हैं और कोई भी शरीफ लड़का उसे अपने कमरे में कैसे रखता है तो बेदाढ़ीदार चेहरा घबड़ा गया। शीशे में दिखाई पड़ा कि बेदाढ़ीदार चेहरे का रंग एकदम उतर गया है और वह जैसे सँस गया है। बेदाढ़ीदार

चेहरे के मुंह से बात नहीं फूटी। उसकी जैसे घिग्घी बँध गई। दाढ़ीदार चेहरा इस बीच खूब गरज गरज कर बातें सुनाता रहा! दाढ़ीदार चेहरे का कहना था कि उसे इस तरह की बेहूदी हरकतें सख्त नापसंद हैं! बहुत कुछ सुन लेने के बाद बेदाढ़ीदार चेहरे ने सोच कर बताया कि वह सब खत उसके किसी दोस्त के हैं और वह अपने मनोविज्ञान के अध्ययन के सिलसिले में उन्हें ले आया था! मगर दाढ़ीदार चेहरा पुराना घाघ मालूम पड़ता था। वह इन सारे हथकंडों को जानता बूझता हुआ लगा।

दाढ़ीदार चेहरे ने अपनी जटा फटकारते हुए, जैसे नाटक में सचमुच दुर्वासा ऋषि का पार्ट करते हुए, दाढ़ी पर हाथ रख कर जोर से कहा—

'एक तो तू इस तरह बाजारू लोगों की तरह इधर उधर अपना दिल लगाता फिरता है, औरतों को चिट्ठियाँ लिखता है, उनकी रद्दी रद्दी चिट्ठियाँ न सिर्फ मँगाता और पढ़ता है बल्कि उन्हें सहेज कर भी इस तरह रखता है गोया अपने हिसाब रामायण रख छोड़ी हो!'

बेदाढ़ी वाले चेहरे ने बीच में रोक कर कहा—

'नहीं पिता जी! आप ठीक से समझ नहीं रहे हैं। बात यह है कि...'

दाढ़ीदार चेहरे ने जोर से डाँट कर कहा—

'चुप रहो! बदतमीज! मुझको सिखा रहे हो कि मैं समझता नहीं हूँ। निकल जाओ घर के बाहर! ऐसे लड़के का मैं मुंह भी नहीं देखना चाहता! मैं समझ लूँगा कि मेरे लड़का ही नहीं था!'

बेदाढ़ीवाला चेहरा कुछ देर तक चुप खड़ा रहा। उसने सोचा

कि दाढ़ी वाले चेहरे का गुस्सा अभी थोड़ी देर में ठंडा पड़ जायगा और सब मामला ठीक हो जायगा। लेकिन उस दिन दाढ़ीदार चेहरा 'ट्रेजेडी' लाने के लिए जैसे उधार खाए बैठा था! वह शांत नहीं हुआ। उसने फिर गर्जना की—

'तुमने अभी सुना नहीं? मैं कह रहा हूं घर से बाहर निकल जाओ! मैं नहीं चाहता कि लड़के के साथ साथ उसका बाप भी बदनाम हो! . . . खड़े क्या हो? कह रहा हूँ कि अभी, इसी वक्त फौरन मेरे घर के बाहर निकल जाओ! नालायक। डूब मर!!'

हार कर बेमूँछ दाढ़ी वाला चेहरा उठा और उठ कर दाढ़ी मूँछ खूंटी पर टाँगता हुआ घर के बाहर चला गया। घर की कुंडी चढ़ाकर वह अपने घर के सामने चबूतरे पर पड़ा पड़ा रात भर सुबकियाँ लेता रहा।

०

दस

|

०

दूसरे दिन सुबह जैसा कि बे मूँछदाढ़ीदार चेहरा सोच रहा था, वही हुआ—यानी दाढ़ीमूँछदार चेहरे से अपने ही लड़के की यह कुगति देखी नहीं गई। उसने उसे भीतर घर में बुला लिया। उसे कुछ खाने पीने को दिया ताकि उसकी रात भर की सुलगी हुई पेटाग्नि किसी तरह शांत हो सके। खाना पीना खा लेने और सब तरह से फुर्सत पा लेने पर मूँछदाढ़ीदार चेहरे ने समझाना शुरू किया—

'देखो! जवान लड़का दोस्त के बराबर होता है! उसे इस तरह समझाने बुझाने और सजा देने के लिए नहीं कहा गया है। वह अपना भला बुरा खुद समझता है। लेकिन मैं तुम्हारा बाप हूँ। मुझसे यह नहीं देखा जाता कि तुम इश्क के चक्कर में पड़कर कौड़ी के तीन हो जाओ। आज तक जाने कितने ही लोग इस तरह औरत के फेर में पड़ कर, अपनी आबरू गवाँ चुके हैं!! बड़े-बड़े आशिकों के के नाम व्यंग में ही लिए जाते हैं! मजनूँ बनने के लिए आप पैदा नहीं हुए हैं। दुनियाँ में बहुत से काम पड़े हैं। कुछ और कीजिए!!'

बेमूँछदाढ़ीदार चेहरे पर जैसे एक मौत की सी उदासी छाई रही। शीशे में देख कर इस तरह की उदासी कैसी होनी चाहिए, यह दामोदर ने पता लगा लिया था।

तभी दाढ़ीदार चेहरे ने अंतिम चेतावनी दी—

'तुम्हे अगर अपना नही, तो मेरा और अपनी माँ का ख्याल करना चाहिए। आइंदा फिर इस तरह के गंदे पत्र न तुम्हे लिखते देखूं और न पाते ही देखूं! डाकिए से मै कह दूँगा कि तुम्हारे सारे खत पहिले मेरे हाथ मे आने चाहिए।'

इसके बाद मूछ दाढी और जटा किनारे वाली खूँटी पर टँग गई। उसका काम खत्म हो गया।

घोरपडे यह देख रहे थे कि उन्होने अपनी भरपूर कोशिश से अपने रोमास मे विरहजन्य 'ट्रेजिडी' को बुला लिया है! अब वे अगले खण्ड के बारे मे सोच रहे थे। वकील साहब ने अपने मन को, सहसा अपने अभिभावक पिता की फटकार को सच मान कर, बड़ा दुखी बना लिया। उनका कलेजा फटने सा लगा। वे अपने विरह के उस दुख को केन्द्रीभूत करके पी लेना चाह रहे थे। 'हा पिता! तुम विरह क्या जानो।' वे बुदबुदाने लगे।

उन्होंने अपने जी को फिर कड़ा करके अपना प्रेमपत्र लिखने वाला खुशबूदार 'लेटर-पेड' निकाला। जीवन की ऐसी अनुभूति उन्हें कभी नही हुई थी। उन्होंने इसी लिए अबकी रजिनी को नई कविता में प्रेमपत्र लिखने की ठानी। प्याज के अर्क वाले रूमाल की तनिक सी सहायता से ही उनका रुका हुआ बाँध झर झर करके फूट पड़ा। हिचकियाँ बँध गईं! गला रुँध गया। सामने दो दिशाओं में जलती हुई दो अगर बत्तियो को देख कर वे फफक फफक कर रोने लगे। किसी तरह आंसुओं का वेग जब कम हुआ तो घोरपड़े ने सोचा कि उन्हे आज अपने जीवन का ऐसा चरम उत्कृष्ट पत्र लिखना चाहिए जो उन्ही के रोमास क्षेत्र मे नहीं बल्कि सभी आने वाली नस्लों के दम्पतियो के लिए, प्रेमी जोड़ों के लिए, प्रणय-युग्म के लिए एक

प्रकाश-स्तंभ बन कर चमकता रहे। अब समय आ गया है। दामोदर यह भली भाँति जनाते थे कि उसी एक क्षण को ही जगाने के लिए उन्होंने अपना तमाम रसमय यौवन इस तपस्या की भेंट चढ़ा दी थी! वही मंगल-क्षण आज आ गया था।

कागज को कई बार झार पोंछ कर उन्होंने लिखना शुरू किया:

(ऐ मेरी प्राण प्यारी)
मेरे यौवन की उद्दाम तरंगों को
परिचालित करने वाली ओ बड़वानल!!
जल तू और वेग से जल!!!

सहसा उन्होंने कागज फाड़ दिया। 'यह तो नई कविता नहीं है! इसमें कोई भी अच्छी और नई बात नहीं हैं।' कह कर उन्होंने उस कागज को रद्दी की टोकरी में डाल दिया। नए पृष्ठ पर फिर शुरू किया:

(ओ फूलों की गोद में खेलती हुई शबनमी सुबह!)
मुझको और तुझको
सूरज की तेज किरनें अभी सुखा डालेंगी!
मेरी निष्ठा का विश्वास
और मेरी आस्था की हुंकार
मेरे प्राणों की धवलता
इस जड़ समाज ने आज दी है तोड़!
(जी में आता है उसकी दूँ गूँछ मरोड़
दिया है यह जिसने मेरा प्यार गोड़!)
दो अगर की बत्तियाँ हैं—
हम और तुम

मुहब्बत मनोविज्ञान और मूँछ दाढ़ी

जिन्हें यह पाषाण अगर बत्ती दान
मिलने न देगा कभी !
मैं तो हूँ असहाय
निरुपाय !
लगता है अब न जीवन में मिल पाएँगे
हमारे उर के फूल न खिल पाएँगे !
न खिल पाएँगे---
गेऽ गेंऽऽ ऽऽऽ गे ! !

.. ..

तुम मुझको जाओ भूल
जैसे पथ का गड़ा एक शूल
(चुभता है, लेकिन निकाल कर फेंक देते हैं जिसको !)
मेरी रानी !
मेरी बात मानो ! !
जो है आत्मा का प्यार
वह अमर है, अजिर है, चिर है !
(इसीलिए निगलते समय दाँतों में करता किर किर है !)
मैं भी शरीर से दूँगा तुम्हें बिसार
जैसे फटे कपड़े देते हैं सब उतार
ओ सुव्वारजिनी !
दुष्टन-मद-भंजिनी ! ! (यह लाइन वे नहीं लिखना चाहते
थे लेकिन अपने आप लिख उठी !)
सुहासिनी !
प्रयागवासिनी ! !

मेरी बात मानो
मन में भूल जाना, जानां !
भूलना ही तेरे मन में अड़े
सस्नेह—
दामोदर विष्णु घोरपड़े !!

पत्र समाप्त करते ही वे जैसे निष्प्राण हो गए। उनकी उँगलियाँ थर थर काँप रही थीं। उनकी आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था। वियोग को पूर्ण बनाने तथा गार्जियन-जन्य ट्रैजिडी को सफल बनाने के लिए उन्होंने एक अत्यंत मर्मघाती महत्वपूर्ण कदम उठाया था। उनके आँसू उसी तरह बहने लगे। वे चुपचाप बिस्तर पर पड़ गए। तकिए को बड़ी देर तक अपनी बाँहों में कसते रहे और 'ओह ओह करके 'मुझे भूल जाओ' का मंत्र पढ़ते रहे। धीरे धीरे वे अपनी नींद के झोंके में आकर इलाहाबाद के कमला अस्पताल के ऊपर जैसे मँडराने लगे।

ग्यारह

कई दिनों से इधर घोरपड़े चिंतित थे। उनका मानसिक संतुलन बिगड़ गया था। किसी काम में उनका जी नहीं लगता था। कविता और कवियों के घनचक्कर में जितना ही घुसने की चेष्टा करते थे उतनी ही जोर से उन्हें उबकाई आती थी। घोरपड़े परेशान हो गए थे। इसका एक कारण था। इधर तीन हफ्ते से सुब्बारंजिनी की कोई भी चिट्ठी नहीं आई थी। जब से उन्होंने अपने पत्र में अपनी और समाज की मजबूरियों का उल्लेख करते हुए एक कवितापूर्ण पत्र भेजा था, और आग्रह किया था कि सुब्बारंजिनी इन्हें भूल जाय, तब से सचमुच उधर से, यानी इलाहाबाद से कोई पत्र नहीं आया था। एक हफ्ते तक तो घोरपड़े स्वयं ही वह पत्र लिख कर इतने दुखी रहे कि उन्हें यह याद ही नहीं आई कि इस पत्र का जवाब भी आना चाहिए। दूसरे हफ्ते से ये डाकिए को रास्ते में रोक रोक कर अपनी चिट्ठी के बारे में पूछने लगे। इनाम पाने वाला डाकिया, इस तरह की जिज्ञासा को बड़ी सहानुभूति के साथ सुनाता और समझाता था। तीसरा हफ्ता शुरू होते होते उनकी चिंता का वारपार न रहा। हर तरह के ख्याल उठ उठ कर उनकी चेतना को झकझोरने लगे। उन्होंने सोचा कहीं सारे नाटक को, और इस तरह उलाहने के ढंग से, अपनी विवशताओं का जो उल्लेख उन्होंने किया था, वह रंजिनी ने सच न मान लिया हो। वे सोचते कि इसका

भय अधिक हो भी सकता है क्योंकि उन्होंने अपने नाटक को कहीं भी अस्वाभाविक नहीं रहने दिया था। सोचते सोचते वे अपने मानसिक अनुशासन की इस सफलता पर एकाएक मुस्करा उठे!

दो एक दिन वे यही सोचते रहे कि किस तरह वे पुनः अपना संदेश शुब्बारंजिनी तक पहुंचाएं। खत लिखने की बात वे कई बार सोच चुके थे लेकिन हर बार उनके इस विचार ने उन्हें रोक दिया। जब वे स्वयं ही यह लिख चुके हैं कि 'मुझे भूल जाओ' तब खत के द्वारा फिर हाल चाल पूछना, निश्चित ही (यदि बीच में कुछ न हुआ हो तो) योजना को बिगाड़ देगा और वे अपना तप भंग कर बैठेंगे!

मगर फिर उनकी पशु प्रवृत्ति ने जोर मारा। घोरपड़े की समझ में यह आया कि औरत अगर पास रहे तो भी उसको इस ढंग से रखा जा सकता है कि विरह की स्थिति बनी रहे। बार बार उनको नर-मादा के बारे में लिखे अपने पुराने लेख याद आने लगे! बहुत सोच विचार कर, अपने मनोविज्ञान की सहायता लेकर उन्होंने एक दिन इलाहाबाद सुब्बारंजिनी के पास जवाबी तार भेजा। दो दिनों तक बराबर वे उसकी अपलक प्रतीक्षा करते रहे किन्तु अबकी उत्तर न पाकर उन्हें वैसा ही धक्का लगा जिस तरह घोंटू विद्यार्थी अपना नाम 'रिजल्ट' में से गायब देख कर पाता हो, समझ न पाए कि बात क्या है? डाकखाने से इलाहाबाद कमला अस्पताल टेलीफोन किया। चूँकि बता चुका हूं कि वह परम लीलामय भी तमाशा देखने का शौकीन है, इसलिए कुछ ऐसी जुगुत भिड़ी कि उस समय वे अस्पताल में मौजूद न निकलीं। हाँ दफ्तर से यह अलबत्ता पता चल गया कि सुब्बारंजिनी वहाँ काम करतीं हैं और फिलहाल एकदम स्वस्थ हैं।

यह जानकर कि सुब्बारंजिनी 'स्वस्थ' हैं, आज पहली बार वकील

साहब को घबड़ाहट हुई। आखिर जब 'मिस सुब्बारंजिनी' स्वस्थ भी हैं तो फिर जवाब न आने का क्या कारण है।?

डाकखाने से घर न जाकर वे सीधे परमभक्त कृष्णमाधव जी के घर पहुंचे। अपना विवाह कर लेने के बाद कृष्णमाधव जी अपनी पत्नी के ही साथ अधिक समय बिताते थे। इधर दो तीन महीनों से उन्होंने घोरपड़े जी के घर की ड्योढ़ी नहीं नाँघी थी । परमभक्त जी को यह भी विश्वास था कि उनको 'गुलाबचन्द 'सिरीवास्तो', बरबाद कर देगें। जिसके बारे में कृष्णमाधव जी के मन में पूरी श्रद्धा थी और जिसे वे अपना मित्र समझने की अपेक्षा गुरू ही अधिक समझते थे, उसका इस प्रकार पतन देख कर उन्हें जो ग्लानि हुई थी, वह उन्होंने इसी तरह व्यक्त की थी। यद्यपि वे घोरपड़े के घर पर आते जाते नहीं थे लेकिन जिस तरह के वे जानकार आदमी थे, उसके अनुसार बड़ी आसानी से घोरपड़े के बारे में सब कुछ पता लगाए रखने में कृष्णमाधव जी समर्थ रहते थे। मगर चूंकि वे इस बीच इस सारे नाटक से अनभिज्ञ रक्खे गए थे, इसलिए वे यह नहीं जान पाए थे कि रंजिनी के इलाहाबाद जाने के बाद क्या हुआ। दरअसल जानते तो वे यह भी नहीं थे कि रंजिनी इलाहाबाद क्यों गई! परम भक्त कृष्णमाधव जी अब विश्वनाथ जी के मंदिर में जाकर कीर्तन भजन करते थे।

अपने ऊपर इस तरह एक आकस्मिक विपत्ति सी आई देख कर, घोरपड़े को फिर परम भक्त की याद आई। वे जानते थे कि वही आदमी इस कुसमय में काम आ सकता है। घोरपड़े यह समझते थे कि कौन आदमी किस काम के लिए उपयुक्त है और वे समय पर उसका उपयोग करने में कभी चूकते भी नहीं थे। मनोविज्ञान शास्त्र का

एक यही व्यवहारिक उपयोग वे किया करते थे। इस काम में आगे कुछ भी सहायता लेने के लिए वे गुलाबचंद को बेकार आदमी समझते थे।

घोरपड़े ने कृष्णमाधव जी के दरवाजे की कुंडी खटखटाई। ऊपर से ही परम भक्त जी ने झांक कर देखा तो घोरपड़े खड़े दिखाई पड़े। आज पहिली बार उनके दरवाजे पर वकील साहब आए थे। गुलाबचंद से विरोध मानने के कारण वे वकील साहब से भी खिंचे ही रहते थे लेकिन आज इस तरह उनको अपने दरवाजे पर खड़ा हुआ देखकर उनकी सारी ग्लानि दूर हो गई। उनकी पुरानी श्रद्धा फिर उमड़ आई। वे दौड़ कर नीचे आए और अपनी बैठक में उन्हें लेजाकर प्रेम से बिठाया।

'कहिए आज कैसे इतने दिन बाद एकाएक इधर आ निकले?' परम भक्त कृष्णमाधव जी ने हाथ जोड़ कर कहा।

'क्या बताऊँ भई, आजकल बड़ी परेशानी में पड़ गया हूँ। तुम तो जानते ही हो रंजिनी इलाहाबाद गई थीं, मगर तब से उनका कोई हाल चाल ही नहीं मिला। पता नहीं वे कहाँ हैं और उनका क्या हुआ? तुम तो जानते हो! इलाहाबाद में शायद तुम्हारे कोई मित्र भी हैं जहाँ वे ठहरने वाली थीं।'

'हाँ हाँ! मैं आज ही चिट्ठी लिखकर पूछता हूँ। पता चल जायगा।'

'चिट्ठी विट्ठी से काम नहीं चलेगा। मैं तो सोचता हूँ कि एक दिन के लिए वहाँ हो आया जाय। आखिर इलाहाबाद तो यहाँ से बहुत दूर भी नहीं है। तुम चल सकते हो?'

'हाँ हाँ! चल क्यों नहीं सकता! अरे लीजिए वकील साहब! अब उनका पता हम न लगाने जायंगे तो क्या कोई और जायगा?

आप भी चलिए। भगवान भोलानाथ चाहेंगे तो वहाँ पहुंच कर हम लोग भाभी जी को एकदम स्वस्थ ही पायेंगे।'

'हाँ ऽऽ। देखो!!' घोरपड़े बोले। टेलीफोन करके जो कुछ भी उन्होंने पता किया था, उसे वे बड़ी आसानी के साथ पचा गए।

'तब फिर कल ही सुबह चले चलो । मैं कल कचहरी न जाऊँगा घोरपड़े ने कहा।

'चलिए। सुबह की गाड़ी पर आपको मिल जाऊँगा। आठ बजे।"

घोरपड़े घर वापस आए। किसी तरह दिन भर तैयारी करते रहे। उनका दिल घबड़ा रहा था। ज्यों ज्यों बिस्तर का बंधन बाँधते त्यों त्यों उनका दिल धड़कता था। उनकी उंगलियाँ काँप रही थीं। पता नहीं क्या बात है कि चिट्ठी अब तक नहीं आई, यही सब सोचते सोचते उन्होंने अपनी अटैची में सब समान रख लिया।

दूसरे दिन घोरपड़े, कृष्णमाधव जी के साथ इलाहाबाद पहुंच गए।

ग्यारह

रास्ते भर वे वकील साहब को दिलासा दिलाते रहे। घोरपड़े उस सारी सहानुभूति के लिए 'हूँ हूँ' करते रहे। इलाहाबाद पहुंचते ही वे सीधे कमला-अस्पताल पहुंचे। खुद भीतर नहीं गए। कृष्ण-माधव जी को भेज कर पता करवाया। उन्होंने वापस आकर बताया कि आज अस्पताल में उनकी छुट्टी है। उनके घर का पता भी दफ्तर से वे मालूम कर लाए थे। दोनों तत्काल सुब्बारंजिनी के निवासस्थान चल दिये।

दरवाजे पर रुक कर फिर घोरपड़े का दिल धड़कने लगा। पता नहीं क्यों, वे यही सोच रहे थे कि यहाँ भी रंजिनी नहीं मिलेगी। चूँकि घोरपड़े का सच्चा प्रेम था, इसलिए जो कुछ उनका मन कह रहा था, वही हुआ। रंजिनी वहाँ भी नहीं मिलीं। परमभक्त कृष्ण माधव जी, जो यहाँ भी दरवाजा खटखटाने के लिए आगे आगे गए थे, उदास निराश यह संदेश लेकर लौटे आए कि रंजिनी जी कचहरी गई हैं और वहाँ वे सिविल मैरिज रजिस्टर करने वाले मजिस्ट्रेट के इजलास में मिलेंगी। सहसा सिविल-मैरिज का नाम सुनकर घोरपड़े को तो फिर एकदम कँपकँपी छूट गई! वे घबड़ा गए। आखिर हुई हुआई शादी को फिर से सिविल मैरिज में रजिस्टर कराने की क्या जरूरत आ गई? रंजिनी ने उस रोमांस नाटक में यह कार्यक्रम कहाँ से निकाल लिया? यह तो मूल योजना में कहीं था ही नहीं!! घोरपड़े का दिमाग एकदम फिरकी की तरह नाच रहा था और तबीयत हरी होने के लिये बेचैन हो रही थी! उनकी बोली एकदम गायब हो गई थी! कृष्णमाधव जी बार बार कह रहे थे—

'आखिर इतना तो पता चल ही गया कि भाभी जी स्वस्थ हैं और हैं!! यह भी पता चल गया कि इस वक्त कचहरी गई हैं सिविल

मैरिज वाले इजलास में। होंगी कोई उनकी दोस्त, जिनकी शादी में गवाही वगैरह देने चली गई होंगी।! आखिर इसमें परेशानी की क्या बात है?'

लेकिन इसमें जो परेशानी की बात थी, वह परम भक्त जी नहीं समझ सकते थे! ज्यों ज्यों वे ढाढस बँधाते थे त्यों त्यों दामोदर का दिल और भी घबड़ाता था! भावी आशंका के समय यदि कोई धीरज बँधाए तो खूब रोने का जी होता है। लेकिन अपने डूबते मन को मनोविज्ञान की डोर पकड़ाए वे उस अथाह समुद्र में गोते खिला रहे थे।

कचहरी भी आ गई। घोरपड़े जी के पाँव मन मन भर के हो रहे थे। तबीयत चाह रही थी कि वे उसी रिक्शे पर ही बैठे रह जायं। कृष्ण माधव जी ने तब तक वह इजलास ढूँढ निकाला। दोनों पहुँच कर चुपचाप किनारे पड़ी एक बेंच पर अदालती कमरे में बैठ गए। कुछ कुछ सन्नाटा लग रहा था। मजिस्ट्रेट की कुर्सी खाली थी। घोरपड़े और उनके परम भक्त मित्र सोचने लगे कि जब इजलास शुरू होगा तो यहीं रंजिनी से भेंट हो जायगी अन्यथा लौट कर घर पर मिल लेंगे। अब आगे चलना घोरपड़े के बूते नहीं था। तभी घोरपड़े सहसा मजिस्ट्रेट के पेशकार और पुलिस के एक हवलदार के बीच होने वाली बातचीत से चौंक पड़े।

पेशकार साहब काफी बुजुर्ग थे। उनकी आँखों पर का चश्मा, जिसकी एक कमानी उन्होंने तागे से बना रक्खी थी, बातचीत के दरम्यान काफी नीचे ऊपर चढ़ता था। पोपले मुंह में पान की दबी हुई गिलौरी उनके लहजे को एक खास रंग के साथ व्यक्त करती थी। वे कह रहे थे—

'हवलदार साहब! अब पुराने जमाने हवा हो गए। हमारी अपनी बीबियों को जाने दीजिए! आजकल की लौंडियाँ दूसरे रंग में रहती हैं। मजाल क्या जो नाक पर मक्खी बैठ जाय! अब तो यह (एक गाली देकर!) तलाक पर उतर आती हैं! जिसे देखिए! शोहर छोड़ने को तैयार! हुँ हुं! ब्याह न हो गया कोई पन्सारी की दूकान हो गई! यह न लेंगे, अब वह्न लेंगे! अजी मियाँ बेचारे तो फिर इसी भर के हो जायंगे!!'

इतना कहकर उन्होंने फिर अपनी पान की डिबिया निकाली और एक पान हवलदार साहब की तरफ बढ़ाया। हवलदार साहब कुछ रसीले जवान थे। लगता था कि इत्तिफाक से पुलिस में भरती हो गए थे। पान खाकर बोले।

'अजी जाने भी दो पेशकार साहब! आजकल की लौंडियों के तो नक्शे ही नहीं मिलते!...मगर हुआ क्या? आज साहब के इजलास में कोई नया किस्सा आया था क्या?'

पेशकार ने कहा—

'नया पुराना क्या! सब एक से ही होते हैं। एक मदरासिन थी। आज आई थी। यहीं अस्पताल में काम करती है। एक को छोड़कर आज दूसरे के साथ अपना पट्टा लिखवा ले गई!!'

हवलदार ने जैसे किस्सा बढ़ाने के लिए जिज्ञासा की—

'तो हुआ क्या? क्या पुराने वाले मे कुछ अनबन थी? कि उसने कोई दूसरी जोरू रख ली? मर्द सालों का भी तो कोई ईमान नहीं होता! औरत ही क्या करे?'

मर्द के नाम पर लांछन सुनकर पेशकार साहब को जैसे कुछ ताव आ गया!

'अजी मर्द को क्या कहते हो? इस मदरासिन का मर्द कोई नेक और सीधा आदमी है! उसने इसे एक चिट्ठी मुहब्बत में लिखी कि इस परीशानी से अच्छा कि तू मुझे भूल जा! बस! यह लौंडिया, उसको लेकर यहाँ चली आई और कहने लगी कि 'अब बस मैं उसको भूल गई!!' तो मजिस्ट्रेट हुजूर भी क्या करते? जब उस मर्द का खुद अपने हाथों का यह लिखा कागज मौजूद था और औरत उसके साथ रहना नहीं चाहती थी तो मजिस्ट्रेट बेचारा क्या करता? उसने मंजूर कर लिया और कह दिया कि 'जा अब जिसके साथ मर्जी हो तिसके साथ रह! बस चट वहीं दूसरा खड़ा था, उसने उसका हाथ पकड़ लिया। मजिस्ट्रेट क्या करे? उसका काम तो लिखना होता है! बस उसने दूसरे मर्द का नाम लिख लिया!!...अजी हवलदार साहब! अब तुमसे क्या छिपा है? यह सब पहिले की लगी लगाई रहती है! मर्द बेचारे पर तो कोई भी जुर्म लगा कर उसे नालायक साबित किया जा सकता है!'

हवलदार साहब ने हूँ हूँ तो कर दी लेकिन मन से वे एकदम ऐसा नहीं मान रहे थे ऐसा उनके चेहरे से लग रहा था। लेकिन चूंकि उन्हें रोज ही उस अदालत में हाजिरी देनी पड़ती थी, इसलिए पेशकार साहब से बेकार की हुज्जत करके वे मुफ्त मिलने वाला एक पान खोना नहीं चाहते थे! हुंकारी भरने के बाद उन्होंने सलाम किया और अदालत के कमरे से बाहर चले गए!

घोरपड़े जी इतना सब सुनकर भी कलेजे पर पत्थर रक्खे बैठे हुए थे। अकेला देखकर उठे और पेशकार साहब के पास जाकर बोले—

'कचहरी का काम कब से शुरू होगा?'

'शुरू होगा?' पेशकार साहब हँस पड़े। 'अजी साहब अब तो

आज का काम खत्म होने को आ गया? हुजूर उठकर चले गए। आज एक ही 'केस' था वह हो गया।' उन्होंने आगे कहा।

'आज कोई सुब्बारंजिनी जी तो नहीं आई थीं?'

'अजी साहब? आप अच्छा मजाक कर रहे हैं! उन्ही का तो केस था! अपने पुराने शौहर को शायद चोरघड़े या घोरचढ़े को उन्होंने तलाक दे दिया है। अब तो किसी बंगाली से उन्होंने शादी कर ली है। शायद मुकर्जी हैं कि चटर्जी! पता नहीं! देख कर कहिए तो बता दूं!' उनका चश्मा एक एक वाक्य के आरोह अवरोह पर नाच रहा था!

घोरपड़े ने तीसरे वाक्य के बाद और कुछ नहीं सुना। वे कटे पेड़ की नाईं गिरना चाह रहे ही रहे थे कि साथ आए हुए परम भक्त कृष्ण माधव जी काम आए!

पेशकार साहब भी घबड़ा उठे दौड़कर पानी लाए। घोरपड़े एकदम जैसे बेहोश होने लग गए। उनके मुंह से एक ही शब्द निकला—

'हाय री मनोग्रंथि!

o

बारह

०

एक कमरा है।

कमरे के बीचोंबीच एक गोल मेज है जिसपर ताँबे का हवनकुंड रक्खा हुआ है। उसमें से गूगुल की महक निकल रही है।कमरा महक से भर गया है।

कमरे की खिड़कियों और दरवाजों पर मोटे मोटे सफेद कैनवेश के पर्दे लटक रहे हैं जिनसे पारदर्शन तो क्या, शायद हवा भी कभी भूल कर नहीं घुस सकती।

कमरे की दीवारों पर का रंग भी अब सफेद हो गया है। उनपर और किसी चीज के कोई निशान नहीं दिखाई पड़ते हैं। एक आध जगह ज्यादा खुरची हुई लगती हैं---शायद वहाँ दीवारों पर चित्र बने हुए थे!!

दीवारों पर बड़े बड़े फ्रेम में भारत के प्रमुख अखबारों के प्रथम पृष्ठ की पूरी साइज शीशों में लगी हुई हैं। कुछ एक दिमागी तस्वीरें हैं जिनमें मस्तिष्क की शिराओं को नीली और लाल रोशनाई से दिखाया गया है। कुछ छोटी छोटी फोटो भी हैं जिनके नीचे लिखा है--सिरिल बर्ट, फ्रायड, मैकड्गल ! एक तरफ एक औरत के शरीर का ढांचा बना हुआ लगा है जिसके नीचे दर्ज है--रहस्यमय प्रयोगशाला !

कमरे के एक कोने में एक प्रस्तर मूर्ति का धड़ वाला भाग रक्खा है। उल्टे बाल, बंगाली काट का कुर्ता, गले में चादर---देखने से ही पता चलता है कि किसी बंगाली का धड़ है!!

कमरे के एक किनारे एक तख्त पड़ा हुआ है। उसपर एक शीतल-पाटी पडी हुई है। ढीले ढाले वस्त्र पहिने उसपर बैठे हुए हैं एडवो-केट दामोदर विष्णे घोरपडे। सामने उनका भरा हुआ हुक्का रक्खा है। पास ही एक चौकी पर उपनिषदों की प्रतियाँ रक्खी हुई हैं और उसपर रक्खा हुआ है ताजा अखबार। उनके ठीक सिर के ऊपर चित्र है। चित्र मे दो साँड़ लड़ते हुए दिखाए गए है। उन दोनों को देखती हुई एक गाय सहमी खड़ी है।

दो ही महीने के भीतर घोरपड़े का जैसे कायापलट हो गया है। वे अब अपने मनोविज्ञान से मन की शांति निकालना चाह रहे हैं! सब कुछ खोकर भी उन्होंने जो मनोविज्ञान का सत पाया था उसे ही वह संजीवनी-बूटी की तरह सिद्ध करके मानव कल्याण के हित अर्पण करना चाहते हैं!!

उनका सारा दृष्टिकोण बदल गया है। कमरे से उन्होंने अपनी कथित पत्नी की फोटो हटा दी है। उसकी जगह उन्होंने एक बड़ा सा कद्द-आदम शीशा लगा लिया है! रोज सुबह उठकर वे उसमें अपना चेहरा दखते हैं और फिर मुस्करा कर अपने को ही माला चढ़ाते हैं। वे फिर अगर बत्ती की जगह गुगुल सुलगा कर अपनी नाक बासते हैं और इस प्रकार अपने से ही अपने अहम् की तुष्टि करते हैं!! वे अब चारपाई पर नहीं सोते!

वे रंजिनी को तो अपने मानसिक अनुशासन से लगभग भूल गई चीज ही समझते हैं लेकिन वे बंगाली को नहीं भूल पाते। उसी के लिए उन्होंने एक बंगाली परिवेश धारण किए एक युवक का धड़ बनवा कर कमरे में रखवा लिया है! किन्तु उस धड़ को देखकर वे

बंगाली तक ही याद करके रह जाते हैं। उससे आगे वे अपनी स्मृति को अपने मानसिक-अनुशासन से नहीं बढ़ने देते!

उनके कमरे में कोई ऐसी पुरानी चीज नहीं है जिसे देखकर किसी पुरानी बात की याद आ सके। सब चीजों को क्रम से घोरपड़े जी ने हटवा दिया है। उनके पास अपने पिता विष्णु पाडुरंग घोरपड़े का जो चित्र था उसे भी उन्होंने बक्स में रख दिया है। हाँ, उसकी जगह किनारे वाली खूँटी पर अब भी वह दाढ़ी मूँछ और जटा ज्यों की त्यों विराजमान है। वे अब इस दाढ़ी मूँछ की पूजा करते हैं। उसपर भी रोज माला चढ़ाते हैं।

वैसे तो घोरपड़े सब कुछ भूल गए हैं। उन्हें यह भी याद नहीं रहता कि वे बनारस में हैं या इलाहाबाद में। अक्सर वे खोये खोये ही रहते हैं। फिर भी घोरपड़े इधर एक किताब लिखना चाह रहे हैं। किताब का शीर्षक पहिले ही से दे दिया गया है इसलिए बता रहा हूँ—उसका नाम होगा: 'प्रेम का दुष्परिणाम!'

वकील साहब चुपचाप बैठे सिगरेट की जगह हुक्का पीते रहते हैं। कभी कभी कोने में टंगी दाढ़ी मूँछ और जटा की तरफ टकटकी बाध कर देखा करते हैं। अक्सर वे अपने कमरे के तख्त पर बैठे शून्य में इस तरह चुटकी से किसी चीज को पकड़ने की चेष्टा करते पाए जाते हैं जैसे वे किसी टूटी आस्था के बिखरे तारों को पकड़ने लपक रहे हों।

कई बार गजानन चौधरी और परम भक्त कृष्णमाधव जी ने सुझाया कि कमरे का यह मनहूस रंग और उसकी हवा वे बदल डालें लेकिन घोरपड़े यही कहते हैं कि 'अभी समय नहीं आया!'

o

वकील साहब ने अपने कमरे का रंग दुबारा फिर कैसे, कब और क्यों नीला करवाया, किस चक्कर में पड़ कर अपना ढीला ढाला गेरुए कपड़े का बाना बदला, और कैसे बौने गुलाबचंद की सहायता से अपना खोया हुआ 'राज्य' वापस लिया—

इसे जानने के लिए आप कलेजे पर पत्थर रख कर, अभी तक अकल्पित, किसी दूसरे खण्ड की प्रतीक्षा अगर करते बने तो कर डालिये ! ❋

❋यह मजाक 'भूतनाथ ने रानी तेजमती को कैसे छुड़ाया, अगले भाग में पढ़िये' के अंतर्गत किया गया ! !

मुद्रक :—महाबीर प्रसाद, प्रेम प्रेस, कटरा, प्रयाग ।